PUBLIC FINANCE

BAECO-202

Self Learning Material

Directorate of Distance Education

SWAMI VIVEKANAND SUBHARTI UNIVERSITY

MEERUT-250005

UTTAR PRADESH

अनुक्रमणिका
(Contents)

Unit 1: लोक वित्त का अर्थ, क्षेत्र एवं सीमाएँ
(Meaning, Scope and Limits of Public Finance)

उद्देश्य (Objectives) 1

प्रस्तावना (Introduction) 1

1.1 लोक वित्त का अर्थ (Meaning of Public Finance) 2

1.2 लोक वित्त का महत्त्व एवं क्षेत्र (Importance and Scope of Public Finance) 3

1.3 आधुनिक राज्य के कार्य (Functions of Modern States) 5

1.4 लोक वित्त की विषय-सामग्री (Subject-matter of Public Finance) 7

1.5 लोक तथा निजी वित्त (Public and Private Finance) 9

1.6 सरकारी या राष्ट्रीय ऋण (National Debt) 15

1.7 राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में लोक वित्त का महत्त्व (Role of Public Finance in National Economy) 17

1.8 सारांश (Summary) 22

1.9 शब्दकोश (Keywords) 23

1.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions) 23

Unit 2: अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त
(Principles of Maximum Social Interest)

उद्देश्य (Objectives) 24

प्रस्तावना (Introduction) 24

2.1 अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त (The Principle of Maximum Social Interest) 25

2.2 अधिकतम सामाजिक लाभ (Maximum Social Interest) 31

2.3 सारांश (Summary) 33

2.4 शब्दकोश (Keywords) 34

2.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions) 34

Unit 3: लोक आगम (Public Revenue)

उद्देश्य (Objectives) 35

प्रस्तावना (Introduction) 35

3.1 अर्थ तथा महत्त्व (Meaning and Significance) 35

3.2 लोक आगम के स्त्रोत (Sources of Public Revenue) 36
3.3 राजस्व/आगम प्राप्तियाँ (Revenue Receipts) 44
3.4 आगम के गैर-कर स्त्रोत (Non-tax Sources of Revenue) 49
3.5 सारांश (Summary) 50
3.6 शब्दकोश (Keywords) 51
3.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions) 51

Unit 4: कर भार (Burden of Taxes)

उद्देश्य (Objectives) 52
प्रस्तावना (Introduction) 53
4.1 कराधान का विकास (The Development of Taxation) 53
4.2 एडम स्मिथ के कराधान सिद्धान्त (Adam Smith's Canons of Taxation) 54
4.3 एडम स्मिथ के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Adam Smith's Canons) 56
4.4 कराधान के अन्य सिद्धान्त (Other Principles of Taxation) 56
4.5 कराघात अथवा कर का दबाव (Impact of Tax) 66
4.6 कर का विवर्तन (Shifting of Tax) 66
4.7 कर का भार अथवा करापात (Incidence of a Tax) 67
4.8 कर-विवर्तन अथवा करापात के सिद्धान्त (Theories of Shifting of Taxes or Incidence of Taxes) 69
4.9 कर भार अथवा कर-विवर्तन को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Determining Incidence or Shifting of Tax) 70
4.10 कर भार की समस्या के अध्ययन का महत्त्व (Importance of Incidence Problem Study) 77
4.11 कुछ मुख्य करों के भार का अध्ययन (Study of the Incidence of Some Important Taxes) 78
4.12 सारांश (Summary) 80
4.13 शब्दकोश (Keywords) 81
4.14 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions) 81

नोट

Unit 1: लोक वित्त का अर्थ, क्षेत्र एवं सीमाएँ (Meaning, Scope and Limits of Public Finance)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
1.1 लोक वित्त का अर्थ (Meaning of Public Finance)
1.2 लोक वित्त का महत्त्व एवं क्षेत्र (Importance and Scope of Public Finance)
1.3 आधुनिक राज्य के कार्य (Functions of Modern States)
1.4 लोक वित्त की विषय-सामग्री (Subject-matter of Public Finance)
1.5 लोक तथा निजी वित्त (Public and Private Finance)
1.6 सरकारी या राष्ट्रीय ऋण (National Debt)
1.7 राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में लोक वित्त का महत्त्व (Role of Public Finance in National Economy)
1.8 सारांश (Summary)
1.9 शब्दकोश (Keywords)
1.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- लोक वित्त का महत्त्व एवं उसके क्षेत्र को समझने में।
- आधुनिक राज्य के कार्यों की भलीभाँति जानकारी प्राप्त करने में।
- लोक वित्त की विषय-सामग्री को समझने हेतु।
- लोक वित्त तथा निजी-वित्त की व्याख्या हेतु।
- राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में लोक वित्त के महत्त्व को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

लोक वित्त अपने आपमें नया विषय नहीं है और इसका अध्ययन प्राचीनकाल से होता आया है किन्तु वैज्ञानिक ढंग से इसका अध्ययन वर्तमान में ही सम्भव हो पाया है। प्राचीनकाल में इस विषय का क्षेत्र संकुचित था किन्तु आज इसका क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत हो चुका है। यद्यपि प्राचीन एकतन्त्रीय प्रणाली में भी आय-व्यय का ब्योरा रखा जाता था किन्तु उसका प्रारूप छोटा होता था क्योंकि राज्य के कार्य अत्यधिक सीमित थे। इसके विपरीत आधुनिक

नोट

राज्यों के कार्यों में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। विशेषकर कल्याणकारी राज्यों की स्थापना के पश्चात् तो राज्य लोगों के आर्थिक जीवन में इतनी गहनता से प्रवेश कर चुका है कि वर्तमान में उसकी अनुपस्थिति की कल्पना ही नहीं की जा सकती। वर्तमान में राज्य का कार्य केवल सुरक्षा का प्रबन्ध करना तथा कानून और न्याय की व्यवस्था तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसे अनेक कल्याणकारी कार्य भी करने होते हैं। उदाहरणार्थ, भारत तथा विश्व के अनेक राज्यों को अनेक कार्य, जैसे–सामाजिक सुरक्षा, जनता का संरक्षण, न्याय, रेलवे, भारी विद्युत संयन्त्रण व अणु-शक्ति जैसी अन्य जनोपयोगी सेवाएँ आदि सम्पन्न करने होते हैं। आर्थिक नियोजन तथा नियोजित विकास की लहर ने जो राज्यों के कार्यों की रूपरेखा में पूर्णतया परिवर्तन कर दिया है। स्वाभाविक है कि राज्यों के कार्यों में निरन्तर वृद्धि होने से आय और व्यय के ढाँचे में भी वृद्धि होगी। इस प्रकार यह कहना कठिन होगा कि राज्य जिसका आरम्भ मात्र जीवन के लिए हुआ था, वह आज अच्छे मानव-जीवन के लिए कार्यरत है। स्पष्ट है कि राज्यों के बढ़ते हुए कार्यकलापों के फलस्वरूप राज्य की आय तथा व्यय के लिए उचित प्रबन्ध की आवश्यकता अनुभव हुई और उसका परिणाम यह हुआ कि आज लोक वित्त और उसकी समस्याओं का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जाने लगा।

1.1 लोक वित्त का अर्थ (Meaning of Public Finance)

लोक वित्त का सम्बन्ध लोक-सत्ताओं या सरकारी सत्ताओं (Public authorities) की आय तथा व्यय से होता है। 'लोक' (Public) शब्द का प्रयोग साधारणत: सरकार (Government) या राज्य (State) के लिए ही किया जाता है। लोक-सत्ताओं में सभी प्रकार की सरकारें सम्मिलित की जाती हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि लोक वित्त का सम्बन्ध केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय-सभी प्रकार की सरकारों के आय-व्यय से होता है और लोक वित्त के अन्तर्गत इन सभी प्रकार की सरकारों के आय-व्यय का अध्ययन किया जाता है। लोक वित्त को विभिन्न विद्वानों ने परिभाषित किया है। कुछ मुख्य-मुख्य परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

प्रो. डाल्टन के शब्दों में, **"लोक वित्त का सम्बन्ध लोक-सत्ताओं की आय व व्यय से तथा इन दोनों के परस्पर समायोजन से है।"**[1]

प्रो. फिण्डले शिराज के अनुसार, **"सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा साधनों की प्राप्ति एवं व्यय से सम्बन्धित सिद्धान्तों का अध्ययन ही राजस्व कहलाता है।"**[2]

बेस्टेबल ने इसको परिभाषित करते हुए कहा है, **"राजकीय साधनों की पूर्ति एवं उनका उपयोग ही अध्ययन की सामग्री है जिसे राजस्व कहा जाता है।"**[3]

प्रो. मेहता के शब्दों में, **"राजस्व राज्य के मौद्रिक तथा साख सम्बन्धी साधनों का अध्ययन है।"**[4]

विश्लेषण–विभिन्न विद्वानों द्वारा लोक वित्त की उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक वित्त का मूल अर्थ केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय शासन-सत्ताओं के आय तथा व्यय से है। लेकिन वर्तमान समय में यह अर्थ और अधिक विस्तृत और व्यापक हो गया है। अब लोक वित्त का अध्ययन केवल सरकारी आय-व्यय से सम्बन्धित नहीं अपितु इसके अन्तर्गत वित्तीय प्रशासन, लेखा परीक्षण व वित्तीय नियन्त्रण भी सम्मिलित किया जाता है।

---

1. "It deals with the income and expenditure of public authorities and with the adjustment of one to another." —*Dalton*
2. "The study of the principles underlying the spending and raising of funds public authorities." —*Findlay Shirras*
3. "Public Finance deals with the expenditure and income of public authorities of the State and their mutual relation as also with the financial administration and control." —*C.F. Bastable*
4. "Public Finance then constitutes a study of the monetary and credit resources of the State." —*J.K. Mehta*

नोट

अत: लोक वित्त की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते हैं–यह वह विज्ञान है जो सार्वजनिक आय-व्यय, ऋण तथा वित्तीय प्रशासन, लेखा परीक्षण व वित्तीय नियन्त्रण के मूल सिद्धान्तों का तथा राजकोषीय क्रियाओं व राजकोषीय नीतियों का समाज और आर्थिक-व्यवस्था पर होने वाली प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है।

सैन्डफोर्ड ने लोक वित्त को निम्न प्रकार परिभाषित किया है, "लोक वित्त का अर्थशास्त्र विशेष रूप से सामूहिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से सम्बन्धित है। इसमें हम उन आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करते हैं जो राज्य अथवा सार्वजनिक क्षेत्र में उठती हैं, जैसे निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों के बीच साधनों का विभाजन किस प्रकार किया जाता है तथा सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत सरकारी व्यय के विभिन्न साध्यों की सन्तुष्टि के लिए साधनों का आवंटन कैसे किया जाता है।"

स्पष्ट है कि लोक वित्त या राज वित्त (Public Finance) विभिन्न सरकारों की आय एवं व्यय के तरीकों एवं समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करता है। लोक निकाय (public bodies) जिन रीतियों से अपना धन खर्च करते हैं तथा जिन उपायों से आय तथा ऋण प्राप्त करते हैं, उन उपायों व रीतियों को ही लोक वित्त की क्रियाओं का नाम दिया जाता है। ये उपाय चूँकि राजकोष (fiscal or public treasury) की क्रियाओं से सम्बन्ध रखते हैं, अत: उन्हें राजकोषीय क्रियाएं (fiscal operations) भी कहा जाता है। इस प्रकार राजकोषीय क्रियाएँ तथा राजकोषीय नीतियाँ (fiscal policies) लोक वित्त के अभिन्न अंग बन गये हैं। राजकोषीय क्रियाओं तथा राजकोषीय नीतियों का प्रभाव राष्ट्रीय उत्पादन, राष्ट्रीय आय, देश के जीवन-स्तर (standard of living), धन तथा आय के वितरण तथा मुद्रा बाजार (money market) आदि पर पड़ता है और उससे देश का सम्पूर्ण आर्थिक जीवन प्रभावित होता है। इस प्रकार, देश का हर व्यक्ति लोक वित्त के उपायों से सम्बन्धित होता है।

1.2 लोक वित्त का महत्त्व एवं क्षेत्र (Importance and Scope of Public Finance)

लोक वित्त के महत्त्व एवं क्षेत्र का अध्ययन हम निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे–

(1) राज्य के कार्य,

(2) आर्थिक जीवन पर राजकोषीय क्रियाओं का प्रभाव, तथा

(3) लोक वित्त की विषय सामग्री।

(1) **राज्य के कार्य** (Functions of the State)–प्राचीन अर्थशास्त्री चूँकि हस्तक्षेप न करने की अबन्ध नीति (laissez faire) में विश्वास करते थे, अत: उन्होंने इस बात का समर्थन किया कि सरकार के कार्यों की संख्या कम से कम होनी चाहिए। सन् 1776 में एडम स्मिथ ने "वेल्थ ऑफ नेशन्स" (Wealth of Nations) नामक अपनी पुस्तक में राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में सर्वप्रथम एक लेख लिखा। **एडम स्मिथ** के अनुसार, "एक पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न राष्ट्र" के कर्त्तव्यों को निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है–

(क) अन्य राष्ट्रों के आक्रमण तथा अन्याय के विरुद्ध राष्ट्र को सुरक्षा प्रदान करना,

(ख) नागरिकों के बीच आन्तरिक शान्ति, न्याय व व्यवस्था बनाये रखना, तथा

(ग) कुछ ऐसे सार्वजनिक कार्यों एवं सार्वजनिक संस्थाओं की स्थापना करना एवं उनका संचालन करना, जो यद्यपि सम्पूर्ण समाज के लिए अत्यधिक लाभदायक हों, परन्तु जिनको निजी व्यक्तियों द्वारा प्रारम्भ करने तथा चलाने में उन्हें मुनाफा न हो। उनका मत था कि ऐसे सार्वजनिक कार्यों में उन कार्यों को मुख्य माना जाना चाहिए जिनके द्वारा राज्य में व्यापार व वाणिज्य की सुविधाजनक स्थितियाँ उत्पन्न हों। यह तो स्पष्ट ही है कि ये तीनों कार्य किसी भी सरकार के प्रारम्भिक कार्य हैं। किसी ऐसी स्थिर राजनैतिक व्यवस्था की कल्पना करना भी असम्भव है जिसमें कि इन कार्यों को मूलभूत कार्य न माना जाता हो। वर्तमान समय में सरकार आर्थिक व सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए जो कार्य करती है उन्हें एडम स्मिथ के तृतीय वर्ग के कार्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि 18वीं शताब्दी के इंग्लैण्ड में एडम स्मिथ ने भी सरकारी खर्च की इन दो शाखाओं (अर्थात आर्थिक व सामाजिक लक्ष्यों) के विकास पर जोर दिया था।

नोट

किन्तु अनेक अर्थशास्त्रियों, जैसे–इंग्लैण्ड में **रोबर्ट ओविन (Robert Owen)** और **जॉन स्टुआर्ट मिल** ने जो कि संस्थापक सम्प्रदाय (classical school) के अनुयायी थे, अबन्ध नीति के दोषों की ओर लोगों का ध्यान दिलाया और सरकारी हस्तक्षेप की वकालत की। फ्राँस में **सिसोमण्डी (Sisomandi)** ने भी अबन्ध नीति (Laissez faire) के सिद्धान्त की आलोचना की और गरीबों के हितों की रक्षा के लिए राजकीय नियन्त्रण का सुझाव दिया। विभिन्न देशों के समाजवादियों (socialists) ने किसी न किसी रूप में उत्पादन के साधनों के समाजीकरण (socialization) का इसलिए सुझाव दिया, जिससे श्रमिक वर्ग को प्रचलित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के शोषण से बचाया जा सके। सन् 1930 की गम्भीर आर्थिक मन्दी (Economic depression) तथा कीन्स द्वारा रोजगार के सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन तो अबन्ध नीति के लिए मौत की घण्टी ही बन गई। कीन्स ने बताया कि राज्य को राजकोषीय क्रियाओं के द्वारा रोजगार में वृद्धि करना और उसे उच्च स्तर पर बनाये रखना सम्भव है। इस प्रकार आर्थिक जीवन में सरकारी हस्तक्षेप तथा प्रवेश का समर्थन बराबर बढ़ता गया और यह क्रम आज भी चालू है।

किन्तु राज्य की धारणा (concept) तथा राज्य के कार्यों की रूपरेखा में शनैः शनैः परिवर्तन होता रहा है। यह बात अब अत्यन्त व्यापक रूप से स्वीकार की जाती है कि राज्य का उद्देश्य सम्पूर्ण समाज का कल्याण अधिक से अधिक करना है। राज्य की इसी धारणा के फलस्वरूप राज्य के कार्यों का विस्तार हुआ है और इसीलिए उसे चिकित्सा सुविधाओं, शिक्षा, निर्धन-सहायता व स्वास्थ्य रक्षा तथा अन्य अनेक जनोपयोगी सेवाओं की व्यवस्था करनी होती है, जिससे सम्पूर्ण समाज के ही कल्याण (welfare) में वृद्धि की जा सके। वर्तमान समय में, राज्य कई प्रकार से अपनी जनता की सहायता करता है। उदाहरणार्थ, वह रेलों, सड़कों, बिजली तथा डाक व तार जैसी मूलभूत सेवाओं की व्यवस्था करके देश की उत्पादन शक्ति में वृद्धि करता है, वह आय के वितरण में पाई जाने वाली असमानताओं को कम करने के लिए आवश्यक पग उठाता है, वह कमी वाली वस्तु के उत्पादन तथा वितरण पर नियन्त्रण लगाता है, वह आवश्यक पदार्थों की कीमतों को नियन्त्रित करता है और मुद्रा-स्फीति (inflation) तथा मन्दी (depression) को रोकने के लिए तथा उनके प्रतिकार के लिए यथोचित पग उठाता है। युद्धकाल में, राज्य देश के सम्पूर्ण साधनों पर अपना नियन्त्रण रखता है तथा उन्हें विशेष दिशा में इसलिए गतिशील करता है ताकि युद्ध का मुकाबला सफलतापूर्वक किया जा सके।

उन्नत एवं विकसित देशों (advanced countries) की सरकारें इस बात के लिए प्रतिबद्ध अथवा वचनबद्ध होती हैं कि वे देश के रोजगार का एक स्थिर एवं व्यापक स्तर बनाये रखें। उनका लक्ष्य ही यह होता है कि देश की अर्थव्यवस्था (economy) यथासम्भव पूर्ण रोजगार के स्तर पर कार्यशील रहे। वे ऐसे कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं जिनके द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो तथा अर्थव्यवस्था निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर रहे। जहाँ तक अल्पविकसित अथवा विकासशील देशों (underdeveloped or developing countries) की सरकारों का प्रश्न है, वे भी प्रगतिशील आर्थिक विकास के कार्यक्रमों के लिए वचनबद्ध (committed) होती हैं। अतः हो सकता है कि ऐसे देश अपने सम्पूर्ण साधनों का ही योजनाबद्ध विकास करें। स्पष्ट है कि विकसित, अल्पविकसित अथवा विकासशील सभी देशों में राज्य के कार्यों में ठोस वृद्धि हुई है और सम्भावना यही है कि सरकार के दायित्वों एवं जिम्मेदारियों में ज्यों-ज्यों वृद्धि होगी, वैसे-वैसे राज्य के कार्यों में और विस्तार होगा। हमारे देश की वर्तमान परिस्थितियाँ इसी तथ्य की पुष्टि करती हैं। हमारा देश एक अल्पविकसित देश हैं। अतः विकास-योजनाओं को लागू करने के लिए सरकार ज्यों-ज्यों नये-नये दायित्व अपने ऊपर ले रही है, त्यों-त्यों आर्थिक जीवन में उसका प्रवेश बढ़ता जा रहा है और उसके कार्यों की संख्या बढ़ती जा रही है।

क्या आप जानते हैं सन् 1776 में एडम स्मिथ ने Wealth of Nations नामक अपनी पुस्तक में राज्य के कार्यों के संबंध में सर्वप्रथम एक लेख लिखा।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. लोक वित्त का संबंध लोक-सत्ताओं या सरकारी सत्ताओं की आय तथा ..... से है।
2. ..... शब्द का प्रयोग साधारणत: सरकार या राज्य के लिए ही किया जाता है।
3. लोक वित्त की क्रियाओं को ..... क्रियाएँ भी कहा जाता है।
4. ..... में एडम स्मिथ ने 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' नामक अपनी पुस्तक में राज्य के कार्यों के संबंध में सर्वप्रथम एक लेख लिखा।
5. सन् ..... में गम्भीर आर्थिक मंदी हुई।

1.3 आधुनिक राज्य के कार्य (Functions of Modern States)

इन बढ़े हुए कार्यों को पूरा करने के लिए राज्य को अपना खर्च बढ़ाना होता है और खर्च की पूर्ति के लिए उसे लोक वित्त में दिये गये तरीकों को अपनाकर विभिन्न स्रोतों से धन प्राप्त करना होता है। अत: राज्य के कार्यों व उत्तरदायित्वों का विस्तार होने के साथ ही साथ आजकल लोक वित्त के अध्ययन का महत्त्व एवं क्षेत्र भी निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है।

आधुनिक राज्य के कार्यों के विश्लेषण से पता चलता है कि जन-कल्याण (welfare) के लिए निम्नलिखित सेवाओं की आवश्यकता होती है–

(*a*) **आन्तरिक व बाह्य सुरक्षा** (security) तथा सैनिक, पुलिस तथा अन्य सुरक्षात्मक सेवाओं के लिए व्यय की व्यवस्था करना।

(*b*) **न्याय** (justice) अथवा विवादों का निपटारा।

(*c*) आर्थिक उद्यमों तथा अन्य ऐसी सेवाओं का नियमन व नियन्त्रण जैसे कि सिक्का ढलाई (coinage), बाट तथा माप (weight and measures), **व्यावसायिक गतिविधयों का नियमन** (regulation) तथा **कुछ उद्यमों** (enterprises) **की सरकारी स्वामित्व व संचालन**।

(*d*) शिक्षा, सामाजिक सहायता, सामाजिक बीमा, स्वास्थ्य नियन्त्रण तथा ऐसी ही अन्य क्रियाओं के द्वारा सामाजिक तथा सांस्कृतिक कल्याण में वृद्धि करना।

(*e*) औषधियों का निर्माण व बिक्री, मद्य की बिक्री, जुआ तथा अन्य समाज विरोधी कार्यवाहियों पर नियन्त्रण लगाकर नैतिक स्तरों का अनियमन करना।

(*f*) प्राकृतिक साधनों का संरक्षण।

(*g*) परिवहन तथा संचार के साधनों पर नियन्त्रण रखकर तथा ऐसे ही अन्य उपायों द्वारा राज्य की एकता को न केवल बनाये रखना अपितु उसमें और वृद्धि करना।

(*h*) सरकार का प्रशासन तथा सरकारी अधिकारियों की सहायता।

(*i*) सरकार की वित्तीय व्यवस्था और राजकोषीय नियन्त्रण का प्रशासन।

(*j*) समय-समय पर धर्म से सम्बन्धित कार्य।

(2) राजकोषीय क्रियाओं के प्रभाव (Effect of Fiscal Operations)–आर्थिक विश्लेषण (economic analysis) से पता चलता है कि लोक वित्त की कार्यवाहियाँ निवेश (investment) तथा उपभोग पर ठोस प्रभाव डालती हैं। अत: इनका उपयोग कुल माँग को नियन्त्रित करने तथा अर्थव्यवस्था को स्थिर करने में सरलता से किया

नोट

जा सकता है। सरकारी व्यय अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने वाली राजकोषीय नीति (fiscal policy) का मुख्य आधार होता है और उसमें परिवर्तन लाकर देश के कुल व्यय को नियन्त्रित किया जा सकता है। किन्तु इस दिशा में सरकारी व्यय केवल तभी सक्रिय होता है तब सरकार किसी निश्चित अवधि में अपनी आय से अधिक या कम खर्च करती है। अत: उन्नत देश अपनी अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने के लिए सदा अच्छी राजकोषीय नीति का ही आश्रय लेते हैं और आर्थिक नियोजन के अन्य सभी उपायों में इसे ही उक्त उद्देश्य की पूर्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय मानते हैं।

यद्यपि ऊपर के वक्तव्य की भी कुछ सीमाएँ हैं, फिर भी राष्ट्रीय आय व उत्पादन में स्थायित्व लाने तथा कुछ सीमाओं के अन्तर्गत उसमें वृद्धि करने का यह सर्वाधिक शक्तिशाली तथा एकमात्र अस्त्र रहा है। एक उन्नत अर्थव्यवस्था (advanced economy) में, जहाँ कि प्रति व्यक्ति आय (per capita income) का काफी अच्छा स्तर होता है, राष्ट्रीय आय की वृद्धि के मार्ग की एक मुख्य बाधा यह होती है कि साधनों में होने वाली वृद्धि की तुलना में माँग नहीं बढ़ती, अत: निवेश के अवसर कम हो जाते हैं। माँग होने का कारण यह होता है कि आय बढ़ने के साथ-साथ सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति (Marginal propensity to consume) घटती जाती है। अत: राष्ट्रीय आय के वितरण में यदि अधिक समानता लाई जाए तो उससे उपभोग कार्य को बल मिलता है और निवेश तथा कुल उत्पादन में वृद्धि होने लगती है। इस प्रकार उच्च आय वाले औद्योगिक देश 'ऊँची मजदूरी व कम लाभ' वाली अर्थव्यवस्था को अपनाकर तथा ऐसी ही अन्य राजकोषीय कार्यवाहियों के द्वारा आय से वितरण में अधिकाधिक समानता लाकर अपनी आय तथा लोगों के जीवन स्तर को काफी ऊँचा उठा सकते हैं। अत: उन्नत देशों में आर्थिक स्थिरता लाने तथा राष्ट्रीय आय व उत्पादन के समान एवं न्यायपूर्ण वितरण के लिए लोक वित्त की कार्यवाहियों को बड़ा महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

अल्पविकसित देशों में भी, सरकार का मुख्य लक्ष्य यह होता है कि देश का तीव्र गति से आर्थिक विकास हो तथा राष्ट्रीय उत्पादन का न्यायपूर्ण वितरण (equitable distribution) हो, और राजकोषीय नीति (fiscal policy) इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए महत्त्वपूर्ण अस्त्र बन सकती है।

राजकोषीय नीति देश की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डाल सकती है, एक ओर तो यह सरकारी आय (Public income) की मात्रा में वृद्धि करके ऐसा कर सकती है और दूसरी ओर, सरकारी खर्च (public expenditure) की मात्रा तथा उसकी दिशा-परिवर्तन करके। तीन महत्त्वपूर्ण राजकोषीय उपाय, जिनके द्वारा कि सरकारी खजाने अथवा राजकोष के साधनों में वृद्धि की जा सकती है, ये हैं–**कराधान** या **करारोपण** (taxation) **जनता के उधार** तथा **ऋण-प्राप्ति** अथवा **साख-निर्माण**। यह आवश्यक है कि राजकोषीय उपायों का उपभोग इनमें परस्पर पूर्ण तालमेल रखते हुए किया जाए, ताकि लोगों के आर्थिक जीवन पर सामाजिक कल्याण एवं आर्थिक प्रगति के रूप में इनके सर्वोत्तम तथा व्यापक प्रभाव पड़ें।

यह भी स्पष्ट रूप से समझ लिया जाना चाहिए कि इन तीनों उपायों में कराधान ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि करों का निर्धारण बुद्धिमत्ता के साथ किया जाए और उनको सावधानी के साथ लागू किया जाए तो कराधान राजकोषीय नीति का अत्यन्त प्रभावशाली अस्त्र बन सकता है। विकास के सामान्य कार्यक्रम के एक अंग के रूप में, कराधान का उपभोग निम्न लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया जा सकता है–

(क) उपभोग पर रोक लगाकर या उसमें उसमें कटौती करके उत्पत्ति के साधनों को उपभोग के निवेश की ओर स्थानान्तरित करना।

(ख) बचत तथा निवेश करने के लिए प्रेरणा व प्रोत्साहन देना।

(ग) साधनों को जनता के हाथों में से राज्यों के हाथों में देना, जिससे सार्वजनिक निवेश करना सम्भव हो सके।

(घ) आर्थिक असमानताओं में कमी करना।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ये सभी लक्ष्य राष्ट्रीय आय में तीव्र वृद्धि तथा उसके वितरण में सुधार के अन्तिम लक्ष्यों से मेल खाते हैं। अत: अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास तथा सामाजिक कल्याण की दृष्टि से भी लोक वित्त की कार्यवाहियों का भारी महत्त्व है।

1.4 लोक वित्त की विषय-सामग्री (Subject-matter of Public Finance)

नोट

लोक वित्त एक ऐसा विज्ञान है, जिसका सम्बन्ध सरकार की आय तथा व्यय से है किन्तु वर्तमान समय में इसका क्षेत्र एवं महत्त्व और विस्तृत हो गया है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इसको निम्नलिखित विभागों में बाँटा है सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण और सम्पूर्ण रूप में राजकोषीय व्यवस्था की समस्याएँ, जैसे कि वित्तीय प्रशासन। इन विभागों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

(1) **सार्वजनिक आय या लोक राजस्व** (Public Revenue)–इन विभाग में सरकारी आय की प्राप्ति एवं उसमें वृद्धि के उपायों, कराधान के सिद्धान्तों तथा उनसे सम्बन्धित अन्य समस्याओं का विवेचन एवं विश्लेषण किया जाता है।

इस विभाग के अन्तर्गत निम्न कार्य किये जाते हैं–

(*a*) सार्वजनिक आय के कौन-कौन से साधन हैं अर्थात् सार्वजनिक आय का वर्गीकरण।

(*b*) कर जो कि सार्वजनिक आय का एक प्रमुख साधन है, कर कितने प्रकार के होते हैं अर्थात् कर का वर्गीकरण।

(*c*) कर लगाने में किन-किन बातों पर ध्यान देना चाहिए अर्थात् करारोपण के सिद्धान्त।

(*d*) जनता की कर देने की शक्ति से क्या तात्पर्य है और यह किन-किन बातों पर निर्भर करती है अर्थात् कर देय क्षमता तथा उसके निर्धारक तत्व।

(*e*) सार्वजनिक आय का देश के उत्पादन तथा आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है अर्थात् सार्वजनिक आय के प्रभाव।

(*f*) किन-किन कारणों से एक कर का भार किसी अन्य व्यक्ति पर टालने में, सफल होता है? अर्थात् कर के विवर्तन के तत्व।

(2) **सार्वजनिक व्यय** (Public Expenditure)–लोक वित्त का यह विभाग सरकारी व्यय के सिद्धान्तों तथा देश के आर्थिक जीवन पर अर्थात् उत्पादन, वितरण तथा विभिन्न वर्गों पर पड़ने वाले उसके प्रभावों का अध्ययन करता है।

इस विभाग के अन्तर्गत निम्नलिखित समस्याओं का अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाता है–

(*a*) सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण।

(*b*) किन-किन मदों पर सरकारी व्यय होना चाहिए और किन-किन पर नहीं? अर्थात् सार्वजनिक व्यय का क्षेत्र।

(*c*) सार्वजनिक व्यय करते समय किन-किन बातों पर ध्यान देना चाहिए अर्थात् सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त।

(*d*) सार्वजनिक व्यय का देश के उत्पादन तथा आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है? अर्थात् सार्वजनिक व्यय के प्रभाव।

(3) **सार्वजनिक ऋण** (Public Debt)–इस विभाग के अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि सरकारी ऋण क्यों लिए जाते हैं, कैसे लिए जाते हैं, उनका भुगतान किस प्रकार किया जाता है तथा उनका समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है।

सार्वजनिक ऋण के अन्तर्गत निम्न बातों का अध्ययन किया जाता है–

(*a*) किन-किन परिस्थितियों में सरकार के लिए ऋण लेना वाँछनीय होगा अर्थात् सार्वजनिक ऋण का क्षेत्र।

(*b*) सार्वजनिक ऋण कितने प्रकार के होते हैं अर्थात् सार्वजनिक ऋण का वर्गीकरण।

(*c*) किन दशाओं में ऋण लेना अधिक उपयुक्त होगा और किन दशाओं में कर लगाना अर्थात् ऋण और कर का तुलनात्मक अध्ययन।

(*d*) किन दशाओं में देश के भीतर से ऋण लेना अधिक उपयुक्त होगा और किन में विदेशों से अर्थात् आन्तरिक तथा बाह्य ऋण की तुलना।

नोट

(*e*) घाटे का वित्त प्रबन्ध क्या होता है, किस सीमा तक घाटे का वित्त प्रबन्ध किया जा सकता है और उसके क्या प्रभाव होते हैं अर्थात् घाटे के वित्त प्रबन्ध का अर्थ, सीमा तथा प्रभाव।

(*f*) ऋण की वापसी के कौन-कौन से तरीके और उनमें से हर एक के क्या गुण व दोष हैं अर्थात् सार्वजनिक ऋण के शोधन के सिद्धान्त।

(*g*) ऋण के क्या प्रभाव होते हैं?

(4) **वित्तीय प्रशासन** (Financial Administration)–लोक वित्त की इस शाखा के अन्तर्गत प्रशासनिक नियन्त्रण के उपायों तथा बजट की तैयारी से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन तथा विश्लेषण किया जाता है। वित्तीय प्रशासन के अन्तर्गत निम्न बातों का अध्ययन किया जाता है–

(*a*) बजट किस प्रकार तैयार, पास तथा कार्यान्वित किया जाता है?

(*b*) विभिन्न करों का एकत्रीकरण किन-किन अधिकारियों तथा संस्थाओं द्वारा होता है?

(*c*) व्यय विभागों का संचालन किस प्रकार होता है?

(*d*) सार्वजनिक लेखों के लिखने तथा उनके ऑडिट के लिए कौन-कौन से विभाग तथा अधिकारी होते हैं तथा उनके क्या-क्या अधिकार तथा उत्तरदायित्व हैं?

बेस्टेबल ने राजस्व के इस विभाग की आवश्यकता तथा महत्त्व पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार कोई भी वित्त की पुस्तक पूर्ण नहीं कही जा सकती है जब तक कि वह वित्तीय प्रशासन और बजट की समस्याओं का अध्ययन नहीं करती।

विषय-सामग्री सम्बन्धी आधुनिक मत

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के मतानुसार, लोक वित्त की विषय-सामग्री के उपरोक्त चार भागों के अतिरिक्त निम्न दो भागों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए–

(1) **आर्थिक स्थिरता** (Economic Stabilisation)–इस विभाग के अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि वर्तमान में सभी अर्थव्यवस्थाओं का, आर्थिक स्थिरता, एक मुख्य उद्देश्य होता है, इसको बनाये रखने के लिए राजकोषीय नीति (Fiscal policy) को किस प्रकार से उपभोग में लाया जाए? देश की राष्ट्रीय आय में न्यायोचित वितरण, कीमत स्थिरता को बनाये रखने के लिए राजकोषीय नीति एक महत्त्वपूर्ण अस्त्र माना जाने लगा है। इसकी सहायता से देश की उत्पादन क्रियाओं का नियमन करके आर्थिक स्थिरता स्थापित की जा सकती है।

(2) **आर्थिक वृद्धि** (Economic Growth)–कुछ विद्वानों का कहना है कि आर्थिक स्थिरता की समस्या मूलभूत रूप से विकसित देशों की होती है। विकासशील देशों में तो मुख्य समस्या आर्थिक वृद्धि की होती है। ऐसी स्थिति में इन देशों में आय, बचत, निवेश एवं पूँजी-निर्माण में वृद्धि करने की आवश्यकता होती है जो राजकोषीय उपकरणों के प्रयोग से ही सम्भव हो सकता है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **प्रो. रैगनर नर्कसे** (R. Nurkse) का कहना ठीक प्रतीत होता है, "मेरा अटूट विश्वास हो चुका है अल्प-विकसित देशों में पूँजी-निर्माण की समस्या को हल करने के लिए लोक वित्त को एक नायक का स्थान प्राप्त हुआ है।" इस प्रकार स्पष्ट है कि नियोजित विकास में राजकोषीय नीति, जोकि लोक वित्त की विषय-सामग्री का अंग है, का अध्ययन आवश्यक है।

लोक वित्त का क्षेत्र तथा इसकी विषय-सामग्री स्थिर नहीं है, क्योंकि राज्य की धारणा (concept), राज्य के कार्यों तथा अर्थशास्त्र की समस्याओं में परिवर्तन होने के साथ ही साथ इसका भी निरन्तर विस्तार होता जा रहा है।

उदाहरण– सन् 1930 की गम्भीर आर्थिक मन्दी तथा 'रोजगार का सामान्य सिद्धान्त' नामक कीन्स के लेख ने इस बात को पहले ही स्पष्ट कर दिया था कि देश में आर्थिक स्थिरता लाने व उसे बनाये रखने में राजकोषीय कार्यवाहियों का कितना अधिक महत्त्व है। आजकल सरकारी आय, सरकारी खर्च तथा सरकारी उधार में वृद्धि तथा राज्य के आर्थिक व सामाजिक उत्तरदायित्वों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रतिरक्षा एवं लोक-प्रशासन की नित्य नई-नई समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। इन सभी तत्वों के कारण लोक वित्त का क्षेत्र भी बराबर विस्तृत होता जा रहा है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

6. लोक वित्त की कार्यवाहियाँ निवेश तथा उपभोग पर ठोस प्रभाव डालती है।
7. सरकारी व्यय अर्थव्यवस्था में अस्थिरता लाने वाली राजकोषीय नीति का मुख्य आधार होता है।
8. राजकोषीय नीति देश की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डाल सकती है।
9. लोक वित्त एक ऐसा विज्ञान है, जिसका सरकार की आय तथा व्यय से कोई संबंध नहीं है।
10. लोक वित्त का क्षेत्र तथा इसकी विषय-सामग्री स्थिर नहीं है।

1.5 लोक तथा निजी वित्त (Public and Private Finance)

लोक वित्त तथा निजी वित्त की तुलना करने से विदित होता है कि इन दोनों के बीच जहाँ कई समानतायें पाई जाती हैं वहाँ अनेक विभिन्नताएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं, जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट है–

1.5.1 समानताएँ (Similarities)

लोक वित्त तथा निजी-वित्त के बीच पाई जाने वाली समानताएँ निम्न प्रकार हैं–

(1) **अधिकतम सन्तुष्टि** (Maximum Satisfaction)–व्यक्ति तथा राज्य दोनों का उद्देश्य, मोटे तौर पर एक-सा ही होता है और वह है मानवीय आवश्यकताओं की तुष्टि (Satisfaction of human wants)। निजी वित्त का सम्बन्ध जहाँ व्यक्तिगत आवश्यकताओं की तुष्टि से होता है, वहाँ लोक वित्त का सम्बन्ध सामाजिक या सामूहिक आवश्यकताओं की तुष्टि से होता है।

(2) **सन्तुलित बजट** (Balanced Budget)–व्यक्ति तथा राज्य दोनों ही धन प्राप्त करते हैं और खर्च भी करते हैं तथा प्रत्येक का प्रयास यह होता है कि आय तथा व्यय को सन्तुलित किया जाए। दोनों ही इस बात का यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं कि खर्च द्वारा अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त की जाए।

(3) **ऋण** (Borrowing)–लोक वित्त तथा निजी वित्त, दोनों की ही स्थिति में जब चालू आय चालू व्यय के मुकाबले कम पड़ जाती है, तो उधार लेना आवश्यक हो जाता है। यही नहीं व्यक्ति की तरह राज्य को भी घाटे के समय लिए गये ऋण की वापसी अदायगी करनी पड़ती है।

(4) **आर्थिक विकल्प** (Economic Choice)–लोक वित्त तथा निजी वित्त दोनों ही चूँकि न्यूनतम साधनों से अधिकतम सन्तुष्टि तथा लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं, अत: दोनों को सदा आय तथा व्यय के समायोजन की समस्या तथा आर्थिक विकल्प (Economic Choice) के चुनाव की समस्या का सामना करना पड़ता है।

1.5.2 असमानताएँ (Dis-similarities)

लोक वित्त तथा निजी वित्त के बीच कई मामलों में मौलिक अन्तर पाया जाता है जैसे कि उद्देश्य, वित्त प्राप्ति के तरीके तथा साधनों की मात्रा आदि के मामलों में। उदाहरण के लिए, जहाँ लोक वित्त जन-कल्याण में विश्वास करता है वहाँ निजी वित्त का एकमात्र लक्ष्य लाभ प्राप्त करना होता है, पहला (Former) जहाँ घाटे की पूर्ति नये कर लगाकर या अन्य प्रकार से कर सकता है, वहाँ दूसरा (Later) ऐसा नहीं कर सकता। इसी प्रकार लोक वित्त के साधन बड़े तथा विशाल होते हैं जबकि निजी वित्त के साधन सीमित होते हैं। अब हम इस विषय की विस्तार से विवेचना करेंगे।

(1) **व्यय का निर्धारण** (Determination of Expenditure)–लोक-सत्ता (Public authority) सर्वप्रथम अपने उस खर्च की मात्रा का निर्धारण करती है जोकि उसे अपने कुछ दायित्वों को पूरा करने के लिए विभिन्न मदों पर व्यय करना होता है और उसके पश्चात् वह उस खर्च की पूर्ति के लिए साधनों की खोज करती है। किन्तु एक

नोट

व्यक्ति सर्वप्रथम अपनी आय पर विचार करता है और उसके बाद वह उस खर्च की मात्रा का निर्धारण करता है जो कि उसे उपभोग की विभिन्न मदों पर व्यय करना होता है। ऐसा होने का कारण यह है कि लोक-सत्ता तो अपनी आय को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार घटा-बढ़ा सकती है, किन्तु किसी व्यक्ति की आय में ऐसी लचक नहीं पाई जाती। **प्रो. डाल्टन** ने इस बात को इन शब्दों में व्यक्त किया है कि, "व्यक्ति तो अपनी आय के अनुसार ही अपने व्यय का समायोजन (adjustment) करता है किन्तु लोक-सत्ता अपने व्यय के अनुसार अपनी आय को समायोजित करती है।" **किन्तु यह कथन भी कुछ सीमाओं तक ही सत्य है।** उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति के दायित्वों एवं खर्चों में वृद्धि होती है तो वह भी अपनी आय को बढ़ाने का प्रयत्न कर सकता है और दूसरी ओर, कोई सरकार या अन्य लोक-सत्ता (Public authority) भी अपने खर्चों को अनिश्चित सीमा तक नहीं बढ़ा सकती। उसे भी यह देखना होता है कि देश की अर्थव्यवस्था को हानि पहुँचाये बिना वह कितनी आय प्राप्त कर सकती है। अत: कभी-कभी तो सरकार को साधनों के अभाव के कारण अपने व्यय को कम करना पड़ जाता है।

(2) **अनिवार्यता का लक्षण** (Compulsory Character)–**फिण्डले शिराज** के अनुसार, "सरकारी व्यय का एक अन्य लक्षण है, इसमें पाया जाने वाला अनिवार्यता का तत्व।" कुछ व्यय ऐसे होते हैं जिन्हें राज्य स्थगित या उपेक्षित नहीं कर सकता, किन्तु व्यक्ति की स्थिति में ऐसा करना सम्भव है। उदाहरण के लिए, प्रतिरक्षा तथा लोक प्रशासन आदि पर किया जाने वाला व्यय अनिवार्य प्रकृति का होता है। इसी प्रकार, राज्य लोगों को इस बात के लिए बाध्य कर सकता है कि वे कपड़े, अनाज तथा अन्य वस्तुओं की किसी विशेष किस्म का ही प्रयोग करें, इन वस्तुओं को सरकार द्वारा निर्धारित दामों पर ही खरीदें तथा सरकार द्वारा निर्धारित दरों से कर अदा करें। किन्तु प्राइवेट व्यक्ति या व्यावसायिक फर्म आदि ऐसा नहीं कर सकते। यही नहीं, परिस्थितियाँ भी व्यक्ति को इस बात के लिए बाध्य कर सकती हैं कि वे भोजन, न्यूनतम वस्त्र तथा मकान आदि की मदों पर कुछ विशेष मात्रा में ही खर्च करें तथा कुछ विशेष किस्म या नमूने के ही कपड़े खरीदें व पहनें। इन सब मामलों में वह इन केवल अपनी रुचि, स्वाद तथा पसन्द (choice) से ही प्रेरित होता है बल्कि वस्तुओं की उपलब्धता तथा समाज के वातावरण से भी प्रभावित होता है।

(3) **सम-सीमान्त तुष्टिगुण नियम** (Principle of Equi-marginal Utility)–अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए, "व्यक्ति अपने खर्च को विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं पर इस प्रकार वितरित करता है कि सभी मदों पर किये गए खर्चों का सीमान्त तुष्टिगुण या सीमान्त उपयोगिता (marginal utility) सब बराबर रहे और सम्पूर्ण व्यय से प्राप्त होने वाला कुल तुष्टिगुण अधिकतम हो।" होना यह चाहिए कि विभिन्न उद्देश्यों व मदों के बीच सरकारी खर्च के वितरण पर भी ऐसा ही नियम लागू हो। परन्तु यह देखा जाता है कि सरकार के मुकाबले व्यक्ति इस सिद्धान्त को लागू करने में अधिक समर्थ होता है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति अपनी इच्छा की खर्च की मदों का चुनाव करने में अधिक स्वतन्त्र होता है, जबकि सरकार इतनी स्वतन्त्र नहीं होती। सामान्यत: व्यक्ति के खर्च करने या न करने का पैमाना यह होता है कि किसी विशेष खर्च से उसे कितना लाभ प्राप्त हो रहा है ... किन्तु सरकार ... इस पैमाने को अपने खर्च का आधार नहीं बना सकती, विशेष रूप से प्रतिरक्षा, कानून व व्यवस्था की स्थापना, शिक्षा, निर्धनों की सहायता आदि के मामलों पर किये जाने वाले खर्च में। स्पष्ट है कि राज्य के इन खर्चों के मामले में कोई स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती। कभी-कभी तो सरकार पर इस बात के लिए दबाव डाला जाता है कि वह कुछ विशेष मदों पर ही धन व्यय करे, जबकि दबाव के अभाव की स्थिति में सम्भव है सरकार ऐसा करना पसन्द न करती। ऐसा तब ही होता है जबकि देश में कुछ निहित स्वार्थ वाले वर्ग या व्यक्ति अधिक शक्तिशाली बनकर सरकार की आलोचना करने तथा उस पर दबाव डालने की स्थिति में आ जाते हैं। परिणाम यह होता है कि आवश्यक मदों पर सरकार के खर्चे बढ़ जाते हैं।

(4) **बजट की प्रकृति** (Nature of Budget)–व्यक्ति साधारणतया बेशी के बजट (surplus budget) में अर्थात आय से कम खर्च करने में विश्वास करता है और घाटे के बजट (deficit budget) को अर्थात आय से अधिक खर्च करने की नीति को उचित तथा वांछनीय नहीं समझता। परन्तु सरकार या अन्य कोई लोक-सत्ता वर्षों तक घाटे का बजट बनाना लाभदायक समझ सकती है, विशेष रूप से आर्थिक विकास तथा युद्ध की अवधियों में व्यक्ति द्वारा बेशी बजट बनाना बड़ा अच्छा माना जाता है और इस कार्य को उसका एक व्यक्तिगत गुण समझा जाता

नोट

है क्योंकि केवल बचत द्वारा ही कोई पूँजी का संग्रह कर सकता है तथा धनवान बन सकता है, परन्तु सरकार के बेशी के बजट का अर्थ है–उच्च स्तर का कराधान या निम्न स्तर का सरकारी व्यय, किन्तु सामान्य दशाओं में, सरकार के लिए बेशी या घाटे के बजट को नहीं, अपितु सन्तुलित बजट (balanced budget) को अच्छा समझा जाता है।

(5) **साधनों की प्रकृति** (Nature of Resources)–व्यक्ति की आय प्राप्त करने के साधन न्यूनाधिक रूप से सीमित ही होते हैं किन्तु सरकार के साधन व्यापक होते हैं। सरकार या लोक-सत्ता आवश्यकता पड़ने पर सामान्य जनता से तथा विदेशों से उधार ले सकती है, किन्तु व्यक्ति के लिए ऐसा करना आमतौर पर सम्भव नहीं होता। सरकार घाटे की वित्त व्यवस्था (deficit financing) का आश्रय ले सकती है, अर्थात् अपनी आय बढ़ाने के लिए नोट छाप सकती है, परन्तु कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता। लोक-सत्ता (public authority) ऐसा कानून बना सकती है कि जिससे लाभदायक व्यवसाय तथा व्यापार को आय बढ़ाने के उद्देश्य से वह अपने हाथों में ले सके, उदाहरण के लिए, वह निजी परिवहन (private transport) तथा निजी थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर सकती है। सरकार सामान्य जनता से धन प्राप्त करने के लिए बल-प्रयोग के तरीके (coercive method) भी अपना सकती है किन्तु व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता।

(6) **व्यय के उद्देश्य का प्रयोजन** (Motive of Expenditure)–व्यावसायिक सौदों में प्राइवेट व्यक्ति का सर्वप्रथम उद्देश्य लाभ प्राप्त करना होता है। परन्तु इसके विपरीत लोक निकायों (Public bodies) के सौदे लाभ के उद्देश्य से नहीं, बल्कि जन-कल्याण के उद्देश्य से प्रेरित होते हैं। उदाहरण के लिए, अनेक सेवाओं जैसे कि जनता का स्वास्थ्य, चिकित्सा सुविधाएँ, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा की कार्यवाहियाँ तथा जलपूर्ति आदि को व्यावसायिक दृष्टि से लाभप्रद नहीं माना जाता किन्तु नागरिकों के कल्याण की दृष्टि से उन्हें अत्यावश्यक समझा जाता है और इसी कारण लोक निकायों द्वारा ऐसी सेवाओं तथा सुविधाओं की व्यवस्था की जाती है।

(7) **दीर्घकालीन दृष्टिकोण** (Long Term Consideration)–प्राइवेट व्यक्ति या कम्पनियाँ उन व्यावसायिक क्षेत्रों में अधिक उदारता से धन लगाती हैं जिनमें कि शीघ्र प्रतिफल (returns) प्राप्त होने की आवश्यकता होती है किन्तु जिन न्यावसायिक क्षेत्रों में नाममात्र का ही प्रतिफल प्राप्त होता है और वह भी काफी देर से, **प्राइवेट पूँजी उनमें जाते हुए जरा शर्माती है,** परन्तु सरकार इन विचारों व दृष्टिकोणों से कभी प्रभावित नहीं होती। अत: सरकार ऐसी परियोजनाओं को भी अपने हाथ में ले लेती है, बशर्ते कि वे जनकल्याण (Public welfare) की दृष्टि से उचित हों। भारत में बहु-उद्देश्यीय जल विद्युत परियोजनाओं (Multipurpose Hydroelectric Projects) का निर्माण इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। इस प्रकार, सरकार द्वारा जन-कल्याण की दृष्टि से अनेक खर्चे किये जाते हैं जो भविष्य तथा वर्तमान दोनों के लिए ही होते हैं। वास्तव में बात यह है कि भविष्य भी उतना ही महत्त्वपूर्ण होता है जितना कि वर्तमान, और सरकार भविष्य एवं वर्तमान के लिए खर्चों की व्यवस्था जिस प्रकार करती है, उस प्रकार व्यक्ति नहीं कर सकता।

(8) **बल-प्रयोग के तरीके** (Coercive Method)–सरकार या अन्य लोक-सत्ता अपनी आय को वसूल करने के लिए बल-प्रयोग के तरीके अपना सकती है। मान लीजिए कोई व्यक्ति अपना देय आय-कर अदा नहीं करता है तो उसे अदालत द्वारा दण्डित कराया जा सकता है अथवा कर-भार बढ़ाकर उसको आर्थिक रूप से दण्डित किया जा सकता है। इस प्रकार, कोई भी व्यक्ति करों की अदायगी से इंकार नहीं कर सकता बशर्ते कि वे उस पर देय हों। इसके विपरीत, प्राइवेट व्यक्ति तथा व्यापारी अपनी आय प्राप्त करने के लिए उस प्रकार शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकते जिस प्रकार कि सरकार करती है। यही कारण है कि प्राइवेट व्यक्तियों तथा व्यापारियों के मुकाबले सरकार की आय अधिक आश्वासित (assured) होती है।

(9) **प्रचार तथा लेखा-परीक्षण** (Publicity and Audit Test)–अन्त में, लोक वित्त तथा निजी वित्त का एक और अन्तर उल्लेखनीय है। वह यह है कि प्राइवेट व्यक्ति तो अपने सभी वित्तीय सौदों को गुप्त रखना ही पसन्द करता है किन्तु सरकार अपने बजट-प्रस्तावों का तथा पंचवर्षीय योजना की विभिन्न मदों में साधनों के बंटवारे का अधिक से अधिक प्रचार करती है। इसके अतिरिक्त, लोक-निकायों के खातों का लेखा-परीक्षण तथा निरीक्षण अनिवार्य रूप से किया जाता है किन्तु व्यक्तियों के सम्बन्ध में यह सदा ही आवश्यक नहीं होता।

नोट

टास्क लोक वित्त और निजी वित्त में अन्तर स्पष्ट करें।

1.5.3 लोक वित्त की प्रवृत्तियाँ (Trends in Public Finance)

सामान्य आर्थिक सिद्धान्त (General Economic Theory) ने लोक वित्त की विचारधारा तथा राजकीय कार्यवाहियों को सदा प्रभावित किया है। लोक वित्त की प्राचीन विचारधारा संस्थापक आर्थिक सिद्धान्त (Classical Economic Theory) पर आधारित थी परन्तु बाद में इस सिद्धान्त में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते रहे हैं। अन्त में आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ जिसे 'कीन्स का पूर्ण रोजगार का सामान्य सिद्धान्त (Keyne's General Theory of Full Employment) कहा जाता है। इस सिद्धान्त के कारण लोक वित्त की प्राचीन धारणा में भी परिवर्तन हो गया है।

परिणामस्वरूप वर्तमान युग में लोक वित्त तथा राजकोषीय कार्यवाहियों पर अर्थव्यवस्था में नये-नये योगदान करने का उत्तरदायित्व आ गया है।

1. **प्राचीन या संस्थापक सिद्धान्त** (Classical Theory)–प्राचीन आर्थिक सिद्धान्त की मान्यता थी कि पूर्ति (supply) अपनी माँग (demand) स्वयं उत्पन्न कर लेती है। अत: कभी भी कोई बड़ी बेरोजगारी अथवा अत्युत्पादन (over production) की स्थिति उत्पन्न नहीं हो सकती। यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार अर्थात साधनों के पूर्ण उपयोग को मान्यता देता है। तर्क यह है कि यदि श्रम गतिशील है और मजदूरियाँ लचकदार (flexible) हैं तो निजी उद्यम द्वारा साधनों का पूर्ण उपयोग किया जा सकता है और यह कि बेरोजगारी (unemployment) श्रम की अगतिशीलता (immobility) तथा मजदूरियों की लोचहीनता अथवा अपरिवर्तनशीलता के कारण उत्पन्न होती है। प्राचीन अथवा संस्थापक अर्थशास्त्रियों (classical economists) का मत था कि एक व्यक्ति का व्यय दूसरे व्यक्ति की आय होती है, परन्तु उनका यह भी कहना था कि किसी एक व्यक्ति के व्यय में कमी होने से अन्य व्यक्ति की आय में कमी नहीं होगी, क्योंकि खर्च कम करके वह जो धन बचायेगा वह स्वयमेव निवेश (Invert) कर दिया जायेगा अर्थात् पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों पर व्यय हो जायेगा। अत: एक व्यक्ति के खर्च में कमी होने के परिणामस्वरूप दूसरे व्यक्ति की आय में कमी नहीं होगी। इसका अर्थ यह है कि प्रभावी या समर्थ माँग (effective demand) में कोई कमी नहीं होगी।

लोक वित्त का प्राचीन सिद्धान्त (classical theory) प्राचीन सामान्य आर्थिक सिद्धान्त पर ही आधारित है। इसके अनुसार निजी उद्यम (Private enterprises) पूर्ण रोजगार के विषय में आश्वस्त रहते हैं और राज्य आर्थिक क्रियाओं का स्तर ऊँचा करने में असमर्थ होता है। यदि सरकार कराधान (taxation) के द्वारा अपना खर्च बढ़ाती है तो इसका अर्थ केवल यही होगा कि खर्च प्राइवेट व्यक्ति के हाथों में से निकलकर सरकार के हाथों में आ गया है किन्तु उससे उत्पादन के क्षेत्र की कुल माँग में वृद्धि नहीं होगी। यदि सरकार उधार लेकर अपने खर्च में वृद्धि करती है तो इसका अर्थ केवल प्राइवेट व्यक्तियों से प्रतियोगिता करना ही होगा और इससे कीमतों में वृद्धि होगी तथा मुद्रास्फीति बढ़ेगी। इसका अर्थ यह है कि प्राचीन अर्थशास्त्री सन्तुलित बजट में विश्वास करते थे। कर चूँकि सदा ही बचतों पर कुछ न कुछ प्रभाव डालते हैं, अत: निजी बचतों में कमी के फलस्वरूप निजी निवेश (private investment) का स्तर भी गिर सकता है। स्पष्ट है कि कर (taxes) पूँजी के संचय पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। अत: उनका विश्वास था कि छोटा बजट ही सर्वोत्तम बजट है। सबसे अधिक अवांछनीय कर वे हैं जो निजी बचतों पर अधिक बोझ डालते हैं जैसे मृत्यु कर, अतिरिक्त कर (super tax) तथा व्यवसाय कर तथा अपेक्षाकृत समृद्धों पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष कर दूसरी ओर, परोक्ष कर (indirect taxes) चूँकि उपभोग पर प्रभाव डालते हैं, अत: आर्थिक दृष्टिकोण से उन्हें हानिरहित माना जा सकता है, यद्यपि सामाजिक दृष्टि से वे भी अवांछनीय होते हैं। इसका अर्थ यह है कि प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने परोक्ष करों के पक्ष का समर्थन किया। बजट का घाटा यदि नोट छापकर या अल्पकालीन सरकारी ऋण लेकर पूरा किया जाए जो उससे मुद्रास्फीति (inflation) ही बढ़ती है। इसका कारण

नोट

यह है कि अल्पावधि में ब्याज की दर इतनी नहीं बढ़ती कि उससे निजी निवेश में गिरावट आ सके और यह स्थिति सरकार के खर्च की वृद्धि को अस्त-व्यस्त कर देती है। यदि बजट के घाटे की पूर्ति दीर्घकालीन सरकारी बॉण्ड जारी करके की जाती है तो ऐसे बॉण्ड केवल निजी व्यवसाय के बॉण्ड या शेयरों के स्थानापन्न (substitute) ही माने जाएँगे और उनसे मुद्रास्फीति उत्पन्न नहीं होगी। बजट का घाटा आमतौर पर प्रगति की दर को गिरा देता है बशर्ते कि सरकार पूँजीगत साजसज्जा के निर्माण के लिए पूर्णतया उधार लिए गये धन का ही उपयोग न करे। ऊपर किये गये विश्लेषण से निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं–

(1) सरकार देश के अन्दर आर्थिक क्रियाओं के स्तर मे वृद्धि नहीं कर सकती है।

(2) बजट सन्तुलित होना चाहिए।

(3) छोटा बजट ही सर्वोत्तम बजट है।

(4) समाज के लिए वे कर हानिकारक होते हैं, जो बचतों पर पड़ें, जैसे आय-कर, मृत्यु-कर आदि। उपभोग पर पड़ने वाले कर कम हानिकारक होते हैं।

(5) यदि बजट के घाटे से बचना सम्भव न हो, तो उचित यह होगा कि दीर्घकालीन बॉण्ड जारी किये जाएँ।

(6) उधार केवल उत्पादकीय निवेश (productive investment) के लिए ही किया जाना चाहिए।

2. **आधुनिक सिद्धान्त** (Modern Theory)–कीन्स का 'रोजगार सिद्धान्त' इस सामान्य धारणा पर टिका है कि एक व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला व्यय दूसरे व्यक्ति की आय है। यदि किसी व्यक्ति द्वारा अपनी पूरी आय खर्च कर दी जाती है वो उसके फलस्वरूप दूसरे व्यक्ति की उतनी आय बढ़ जाती है। यदि प्रत्येक अन्य व्यक्ति भी अपनी पूरी आय खर्च कर देता है तो इससे आय तथा व्यय की परिधि स्थिर ही रहेगी। किन्तु यदि कोई व्यक्ति अपनी प्राप्त आय का कुछ भाग खर्च नहीं करता और खर्च में की गई यह कमी निवेश-व्यय द्वारा पूरी नहीं की जाती है, तो इसका प्रभाव यह होगा कि एक व्यक्ति का घटा हुआ खर्च अन्य व्यक्तियों की आय में कमी कर देगा। आय कम मिलने से लोग भी कम खर्च करेंगे और उसके फलस्वरूप अन्य लोगों की आय भी घट जाएगी। इससे या तो रोजगार उपलब्ध होगा जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में गिरावट आ जाएगी।

तथापि, कीन्स ने एक तर्क को स्वीकार नहीं किया–

(क) कि उपभोग का स्थगन पूँजी के संचय को बढ़ाना है, इसके विपरीत बचत के प्रयास से बेरोजगारी बढ़ती है और राष्ट्रीय आय घटती है।

(ख) कि रोजगार मजदूरियों के निम्न स्तर पर प्रदान किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, उनका मत था कि मजदूरियों में कटौती करने से वस्तुओं की माँग घटेगी और उससे मजदूरों की छँटनी की नौबत आ जाएगी।

(ग) किसी ऐसी आर्थिक पद्धति की स्थापना की प्रवृत्ति पाई जाती है जो कि निजी सम्पत्ति पर आधारित होती है तथा जो पूर्ण रोजगार के स्तर पर अपने को समायोजित (adjust) कर लेती है।

अब हम इस बात का विश्लेषण करेंगे कि अर्थशास्त्र के सामान्य सिद्धान्त में होने वाले इस गम्भीर परिवर्तन ने लोक वित्त के सिद्धान्तों को किस प्रकार प्रभावित किया है–

स्पष्ट है कि कीन्स ने स्वचालित पूर्ण रोजगार की प्राचीन मान्यता को स्वीकार नहीं किया तथा बताया कि सन्तुलित बजट सभी परिस्थितियों में वांछनीय नहीं होता है बल्कि वर्तमान समय में कुछ लक्ष्यों की पूर्ति के लिए बजट को एक शक्तिशाली अस्त्र माना जाता है जैसे कि–(*i*) पूर्ण रोजगार की प्राप्ति, (*ii*) निवेश का ऊँचा स्तर, (*iii*) मुद्रास्फीति का विरोध अर्थात् मुद्रा-स्फीति (inflation) तथा मुद्रा-अवस्फीति (deflation) दोनों का ही अभाव, और (*iv*) श्रेष्ठतर वितरण। किन्तु व्यवहार में, यह कठिन हो सकता है कि सभी लक्ष्यों को एक साथ तुरन्त प्राप्त कर लिया जाए।

नोट

स्थूल रूप में कहा जा सकता है कि यदि मुद्रास्फीति अधिक बढ़ गई हो तो उसका इलाज है बेशी का बजट (surplus budget); और यदि मुद्रा अवस्फीति अधिक बढ़ गई हो तो घाटे का बजट (Deficit budget) बनाकर उसका इलाज किया जा सकता है। यदि मुद्रास्फीति के अभाव की स्थिति लानी है तो वह आवश्यक है कि सभी सरकारी तथा गैर-सरकारी) नई बचतों की कुल मूल्य सभी (सरकारी तथा गैर-सरकारी) नये निवेशों के मूल्य के बराबर हो। यदि बचतें (savings) निवेश (investment) से कम होंगी तो मुद्रास्फीति उत्पन्न होगी और कीमतें बढ़ेगी। इसके विपरीत, यदि बचतें निवेश से अधिक होंगी तो उससे मुद्रा अवस्फीति उत्पन्न होगी, कीमतें गिरने लगेंगी और बेरोजगारी बढ़ने लगेगी।

जैसे ही रोजगार आय में वृद्धि होती है, नई बचतों के लेने के लिए नया निवेश भी अवश्य बढ़ता है। परन्तु आय के बढ़ने के साथ-साथ लोगों की उपभोग-प्रवृत्ति अर्थात् उपभोग के प्रति रुझान (propensity to consume) उतना नहीं बढ़ता कि जितनी आय बढ़ती है। फलत: उपभोग, आय बढ़ने की गति के साथ-साथ नहीं बढ़ पाता। इसका परिणाम यह होता है कि बचतें अधिक बढ़ जाती हैं और समर्थ माँग (effective demand) घट जाती है, और समर्थ माँग घटने के फलस्वरूप बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है। यह वह स्थिति है जिसमें लोक वित्त के महत्त्व का पता चलता है। इस स्थिति में राज्य सड़कों, रेलों जनोपयोगी उद्यमों तथा उद्योगों के निवेश पर सरकारी धन व्यय करके समर्थ माँग में वृद्धि कर सकता है। सरकार द्वारा इस प्रकार निवेश किया जाने वाला धन लोगों से उधार लिया जा सकता है; और लोगों द्वारा सरकार को उधार दिया गया यह धन, हो सकता है उसी आय का भाग हो जिसे कि लोगों ने उपभोग की वस्तुओं पर व्यय न करके नकद रूप में अपने पास रख लिया हो। सरकार घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा उत्पन्न मुद्रा में से भी निवेश के लिए धन ले सकने की अच्छी स्थिति में होती है। इससे वह कुल व्यय की उस कमी को पूरा कर देती है जो कि लोगों की उन बचतों द्वारा उत्पन्न हुई थी जो कि निवेश के लिए उपलब्ध नहीं हो सकी थी। प्राचीन अर्थशास्त्री सरकारी व्यय के इस महत्त्वपूर्ण योगदान को कभी नहीं समझ सकें। उन्होंने तो सदा ही आर्थिक क्रियाओं में सरकारी हस्तक्षेप का विरोध किया और कहा कि राज्य आर्थिक क्रियाओं के स्तर को ऊँचा नहीं उठा सकता। इसी प्रकार, प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने घाटे की वित्त व्यवस्था तथा सरकारी उधार का भी विरोध किया, जबकि आधुनिक अर्थशास्त्री आर्थिक स्थिरता लाने अथवा आर्थिक प्रगति को तेज करने के लिए उन्हें लोक वित्त के महत्त्वपूर्ण उपायों की श्रेणी में रखते हैं।

1.5.4 कराधान तथा समन्यायपूर्ण वितरण (Taxation and Equitable Distribution)

प्राचीन अर्थशास्त्री इस बात का समर्थन नहीं करते थे कि कराधान का उपयोग आय को धनी लोगों के पास से निर्धनों की ओर को स्थानान्तरित करने के एक अस्त्र के रूप में किया जाये, किन्तु लोक वित्त की आधुनिक धारणा के अन्तर्गत, कराधान को आय की असमानताओं को कम करने तथा सामाजिक न्याय में वृद्धि करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता है। इसके अतिरिक्त, प्राचीन अर्थशास्त्री धनिकों के मुकाबले निर्धनों पर ही कर लगाने हो उचित समझते थे और प्रत्यक्ष करों के मुकाबले वे परोक्ष करों का ही समर्थन करते थे। किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि उन लोगों पर ही कर लगाया जाना चाहिए जिनमें कि बचत करने की सामर्थ्य है और उन लोगों पर नहीं, जो कि बेचारे वस्तुओं के उपभोग के लिए ही बेचैन हैं। अन्य शब्दों में, उनका मत है कि निर्धनों की अपेक्षा धनिकों पर कर लगाया जाये। यही नहीं, प्राचीन अर्थशास्त्रियों के विरुद्ध, आधुनिक अर्थशास्त्री आरोही तथा प्रत्यक्ष कराधान (progressive and direct taxation) कर समर्थन इस उद्देश्य से करते हैं ताकि इनका उपयोग सरकारी आय को एकत्र करने तथा देश में आय का समन्यायपूर्ण वितरण करने के एक अस्त्र के रूप में किया जा सके। अनुपार्जित आय (unearned income) को चूँकि सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय माना जाता है, अत: सरकार द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि अनुपार्जित आय का एक भाग प्रत्यक्ष करों (मृत्यु कर तथा लॉटरियों आदि पर कर) के द्वारा ले लिया लाए, किन्तु प्राचीन अर्थशास्त्री इसका भी समर्थन नहीं करते थे। परोक्ष कर लोक वित्त में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं। किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री इस बात को उचित नहीं समझते कि उपभोग की हर वस्तु पर कर लगा दिया जाए। इसके विपरीत, उनका मत है कि उपभोग की केवल उन्हीं वस्तुओं पर कर लगाया जाए जिनका लोगों के सामान्य कल्याण पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े, अर्थात ऐसी वस्तुओं पर कर लगाया जाए जिनका उपभोग धनी करते हैं, निर्धन नहीं।

1.6 सरकारी या राष्ट्रीय ऋण (National Debt)

नोट

प्राचीन अर्थशास्त्रियों की मान्यता के अनुसार, सरकारी ऋण को फलहीन ऋण (dead weight debt) ही माना जाना चाहिए-इन मानो में नहीं कि ऋण बन्धक रखा गया, बल्कि इन मानों में कि सरकार को ऋण देकर व्यर्थ के अर्थात् फलहीन अवसर प्रदान किये गये। किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री सरकारी उधार को लोक वित्त की एक महत्त्वपूर्ण कार्यवाही मानते हैं। वर्तमान समय में अनेक महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों का सामना करने के लिए सरकारी ऋणों को आवश्यक माना जाता है जैसे कि बजट के घाटे को पूरा करने के लिए तथा खाद्यान्न के अभाव व अकाल आदि की स्थितियों से निपटने के लिए। सरकारी उधार को इस कारण भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है कि वर्तमान समय में जनकल्याण के लक्ष्य को पूरा करना इतना महंगा सौदा हो गया है कि कराधान के द्वारा प्राप्त की गई सामान्य आय उसके लिए कम पड़ जाती है। कीन्स के समान, अन्य भी अनेक अर्थशास्त्रियों का विचार है कि बढ़ा हुआ ऐसा सरकारी खर्च, जिसकी वित्तीय व्यवस्था कराधान द्वारा नहीं बल्कि उधार (borrowings) द्वारा की गई हो आर्थिक मन्दी दूर करने का महत्त्वपूर्ण उपाय है। अल्प विकसित देशों के प्राकृतिक साधनों (natural resources) के विकास के लिए भी सरकारी उधार को बड़ा उपयोगी माना जाता है।

1.6.1 कार्यशील वित्त (Activating Finance)

प्रो. बलजीत सिंह ने कार्यशील वित्त का विचार प्रतिपादित किया। उनके अनुसार, कार्यशील वित्त में हम वित्तीय साधनों एवं उपकरणों का उनकी कार्य संरचना पर परीक्षण करते हैं और हम बात करते हैं कि उपकरणों की अर्थव्यवस्था के लिए क्या उपयोगिता है। कार्यशील वित्त प्रबन्ध इस बात की जानकारी देता है कि वित्त प्रबन्ध की विभिन्न विधियाँ किस प्रकार से अर्थव्यवस्था में स्फूर्ति उत्पन्न करती हैं। कार्यशील वित्त प्रबन्ध इस मान्यता को लेकर चलता है कि व्यय अपूर्ण रहता है और इसी के कारण माँग व उत्पादन में असाम्य बना रहता है।

कार्यशील वित्त प्रबन्ध में ऐसे उपाय किये जाते हैं जिससे विनियोग का प्रवाह सदैव बना रहे। यदि ऐसा हुआ तो राष्ट्रीय आय व रोजगार स्तर में वृद्धि होगी। कीन्स और लर्नर के विचार केवल विकसित देशों के लिए उपयुक्त हैं जहाँ कि व्यय का अधिक महत्त्व है। अर्द्धविकसित तथा विकासशील देशों को बचत और विनियोग पर अधिक ध्यान देना चाहिए। अत: विकासशील देशों में राजकोषीय नीतियों का नियमन एवं संचालन इस प्रकार होना चाहिए कि सभी साधनों को रोजगार में लगाकर उत्पादन एवं आय वृद्धि के प्रयास होने चाहिएँ। साधनों के श्रेष्ठतम प्रयोग का प्रयास करना चाहिए। विकासशील देशों में दोनों व्यवस्थाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विकास के प्रारम्भिक चरणों में प्रो. सिंह की मान्यता एवं अन्तिम चरणों में प्रो. (Lerner) के सिद्धान्तों को लागू करके अपेक्षित लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं।

3. **राजस्व में नवीन प्रवृत्तियाँ** (New Trends in Public Finance)–आधुनिक काल में राजस्व के स्वरूप और प्रकृति में भारी परिवर्तन हुआ है जिसके परिणामस्वरूप इसकी परिभाषा कुछ भिन्न प्रकार से की गई है। इस सम्बन्ध में कुछ प्रमुख परिभाषाएँ अग्रलिखित हैं–

(1) **रिचर्ड मसग्रेव** (Richard Musgrave) के अनुसार, "राजस्व सार्वजनिक अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों का अध्ययन है या और स्पष्ट रूप में, आर्थिक नीति के उन पहलुओं का अध्ययन है जो सार्वजनिक बजट की क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं"।[1]

---

1. "...an investigation into the principles of public economy, move precisely into those aspects of economic policy that arise in the operations of the public budget."

—Theory of Public Finance, 1959, page 3.

नोट

(2) **आटो एकस्टीन** (Otto Eckstein) के अनुसार, "राजस्व अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले बजट के प्रभावों का अध्ययन है विशेषकर उस प्रभाव का जो प्रमुख आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति पर पड़ता है जैसे-विकास, स्थायित्व, न्याय एवं कुशलता। यह उस बात का भी अध्ययन है कि क्या होना चाहिए।"[1]

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि राजस्व वास्तविक विज्ञान के साथ-साथ एक आदर्श विज्ञान भी है। यह सरकारी बजट के आर्थिक पहलुओं का अध्ययन करता है। इन आर्थिक पहलुओं का सम्बन्ध आर्थिक उद्देश्यों से है। ये आर्थिक बजट द्वारा प्राप्त किये जाते हैं।

ये आर्थिक उद्देश्य हैं–(1) आर्थिक विकास, (2) आर्थिक स्थायित्व, (3) न्याय एवं कुशलता। प्रो. मसग्रेव (Prof. Musgrave) ने इन आर्थिक उद्देश्यों को तीन भागों में बाँटा है–आर्थिक स्थायीकरण (Economic Stabilisation), आय का वितरण (Distribution of Income) तथा साधनों का आवंटन (Resources Allocation)।

स्पष्ट है कि राजस्व में निम्न दोनों बातों का अध्ययन करते हैं–

(*a*) किस प्रकार इन उद्देश्यों की पूर्ति की जाये,

(*b*) इन उद्देश्यों का पूर्ति करने में बजट की विभिन्न क्रियाओं की अर्थव्यवस्था पर कैसे प्रभाव पड़े हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि राजस्व अब केवल वास्तविक विज्ञान (Positive Science) ही नहीं है बल्कि एक आदर्श विज्ञान भी है। अत: राजस्व की नवीन प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप राजस्व का क्षेत्र और विकसित हो गया है।

4. **विकसित तथा अल्पविकसित देशों में लोक वित्त** (Public Finance in Developed and Underdeveloped Countries)–वर्तमान युग में सभी देश बड़ी तीव्र गति से आर्थिक उन्नति करने में लगे हैं। अल्पविकसित देशों में तो आर्थिक विकास की समस्या है ही, यह समस्या विकसित देशों में भी हैं, क्योंकि वे अपने आर्थिक विकास को निरन्तर विकासशील बनाये रखना चाहते हैं। आजकल राष्ट्रों की सरकारें उनके आर्थिक जीवन में हस्तक्षेप करती हैं, जिससे राष्ट्र की आर्थिक क्रियाएँ प्रभावित होती हैं। इस प्रकार देश के आर्थिक जीवन में बढ़ते हुए सरकारी हस्तक्षेप से, आज के युग में विकसित तथा अल्पविकसित देशों में राजस्व का महत्त्व भी निरन्तर बढ़ रहा है।

1.6.2 विकसित देश एवं लोक वित्त
(Developed Countries and Public Finance)

विकसित देशों के आर्थिक विकास की गति तीव्र होने पर तथा वहाँ के नागरिकों का जीवन-स्तर ऊँचा होने पर भी वहाँ लोक वित्त का पर्याप्त महत्त्व रहता है। राजस्व-नीतियाँ सरकार की वित्तीय नीतियों के रूप में प्रकट होती हैं। इनसे विकसित देशों की अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है। विकसित देश की मुख्य समस्या होती है–देश के आर्थिक जीवन-स्तर को स्थिर बनाये रखना। विकसित देश के अन्तर्गत लोक वित्तीय गतियों का उद्देश्य आर्थिक विकास को प्राप्त करना नहीं होता। **आर्थर स्मिथीज** (Arther Smithies) ने अमेरिका के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है–"वित्तीय नीति का प्रमुख उद्देश्य कुल माँग पर नियन्त्रण करना होता है और यह निजी क्षेत्र के लिए वैकल्पिक प्रयोगों के बीच साधनों के वितरण के इसके परम्परागत कार्य को छोड़ देती है।"

विकसित देशों में आर्थिक विकास के आर्थिक उच्चावचन आते रहते हैं। इसलिए सरकार यह प्रयास करती है कि जन-क्रय-शक्ति (Purchasing power) को नियन्त्रित रखकर आर्थिक स्थिरता बनी रहे।

इस प्रकार विकसित देशों में आर्थिक स्थिरता बनाये रखने में लोक वित्त अतीव महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कुल माँग के नियन्त्रण द्वारा आर्थिक स्थिरता स्थापित की जा सकती है। कुल माँग सार्वजनिक व्यय, उपभोग तथा विनियोग द्वारा प्रभावित होती है। लोक वित्त की नीतियों द्वारा कुल माँग को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया जा

1. "Public Finance is the study of the affects of budgets on the economy particularly the effect on the achievement of the major economic objectives —growth, stability, equality and efficiency." It is also the study of "What ought to be."

नोट

सकता है। यदि देश की सरकार अपनी बजट नीति के द्वारा कुल माँग को स्थिर रखे तो आर्थिक विकास में स्थायित्व लाया जा सकता है। विकसित देशों में सार्वजनिक व्यय, करारोपण, सार्वजनिक ऋण आदि प्रयोग से आर्थिक स्थिरता स्थापित की जाती है और ये सभी लोक वित्त या राजस्व के अन्तर्गत आते हैं। अत: विकसित देशों में आर्थिक स्थायित्व लाने में लोक वित्त का अत्यधिक महत्त्व है।

1.6.3 अल्पविकसित देश एवं लोक वित्त (Under-developed Countries and Public Finance)

विकसित तथा अल्पविकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं में कुछ मूलभूत अन्तर होता है, जैसे विकसित देशों की मुख्य समस्या आर्थिक स्थिरता स्थापित करने की होती है, जबकि अल्पविकसित देशों की मुख्य समस्या आर्थिक विकास करने की होती है। **वाल्टर हेल्लर** (Walter Heller) का मत है कि विकसित तथा अल्पविकसित देशों की राजस्व-नीति प्राय: एक-सी होती है। वित्तीय नीति का प्रमुख उद्देश्य आय एवं धन के वैषम्य को समाप्त करना, विनियोग को प्रोत्साहित करना तथा आर्थिक स्थायित्व बनाये रखना है।

अल्पविकसित देशों में वहाँ की सरकारों का मुख्य उद्देश्य आर्थिक विकास को दिन-प्रतिदिन तीव्र गति प्रदान करना होता है और इसके लिए लोक वित्त या राजस्व की क्रियाओं को प्रयुक्त किया जाता है। यहाँ ए. आर. प्रेस्ट (A. R. Prest) के शब्द द्रष्टव्य हैं–**"अब यह केवल स्वीकार ही नहीं किया जाता बल्कि आशा की जाती है कि सरकार को आर्थिक विकास के लिए दृढ़, निश्चित कार्य करना चाहिए।"**

"विकासशील देशों के आर्थिक विकास हेतु आर्थिक जीवन को नियन्त्रित तथा नियमित किया जाना परमावश्यक है। इस कार्य को सरकार राजस्व की क्रियाओं द्वारा सम्पन्न करती है। अत: यह बात निर्विवाद सत्य है कि अल्पविकसित देशों में राजस्व की नीतियाँ सार्थक एवं महत्त्वपूर्ण कार्य करती हैं।"

अल्पविकसित देशों में लोक वित्त का महत्त्व कुछ अन्य कारणों से भी बढ़ गया है, जो निम्न प्रकार हैं–

(1) **सार्वजनिक बचत की कमी**–विकासशील देशों में बचत की मात्रा बहुत कम होती है, जिससे आर्थिक विकास नहीं हो पाता। इसके लिए वित्त एकत्रित करने की आवश्यकता होती है, जिसे सार्वजनिक बचत (Public savings) की उचित नीति द्वारा बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार इन देशों में राजस्व का महत्त्व अत्यधिक बढ़ा है।

(2) **आर्थिक साधनों को प्राप्त करना**–वर्तमान युग में अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास को तीव्र करना तथा उसमें स्थायित्व स्थापित करना राज्य का प्रमुख कार्य माना जाता है इन देशों के आर्थिक साधनों को बलपूर्वक इकट्ठा करना कठिन होता है, इसलिए आर्थिक साधनों को अप्रत्यक्ष रूप से एकत्रित करना अच्छा समझा जाता है और इसके लिए लोक वित्त सर्वोपयुक्त समझा जाता है।

(3) **निजी क्षेत्र पर नियन्त्रण**–अल्पविकसित देशों में निजी क्षेत्र को एकदम समाप्त करना असम्भव है, क्योंकि ऐसा करने से आर्थिक विकास की गति अवरुद्ध होने का भय रहता है। अत: निजी क्षेत्र के लिए उचित निर्देशन एवं नियन्त्रण का होना आवश्यक है और यह कार्य राजस्व की क्रियाओं द्वारा ही किया जा सकता है।

1.7 राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में लोक वित्त का महत्त्व (Role of Public Finance in National Economy)

वर्तमान समय में लोक वित्त का महत्त्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। यद्यपि प्राचीन अर्थशास्त्रियों के अनुसार राज्य को प्रजा के कार्यों में कम-से-कम हस्तक्षेप करना चाहिए। एडम स्मिथ ने तो केवल सुरक्षा, पुलिस और शान्ति व्यवस्था आदि जैसे कार्यों में ही राजकीय हस्तक्षेप को आवश्यक बताया। इसी प्रकार व्यक्तियों द्वारा किया गया व्यय उत्पादक तथा सरकार द्वारा किया गया व्यय अनुत्पादक होता है। 19वीं शताब्दी में प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री वैगनर (Wagner) ने राज्य की बढ़ती हुई क्रियाओं का प्रतिपादन किया और तब से राज्य के कार्यों में तीव्रता से वृद्धि हुई है। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विशेष रूप से 1930 की महामन्दी के कारण लोक वित्त को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। वर्तमान समय में राज्य को एक कल्याणकारी संस्था माना जाता है। निर्धनता, आर्थिक विषमता, व्यावसायिक उच्चावचन आदि परिस्थितियों के कारण मानव जीवन में राजकीय हस्तक्षेप को अपरिहार्य बना दिया है।

नोट

कार्ल मार्क्स, जॉर्ज बर्नार्ड शॉ तथा सिडनी वेब ने व्यक्तिगत प्रयासों के स्थान पर राजकीय प्रयास व हस्तक्षेप को महत्त्व प्रदान किया है।

लोक वित्त के अध्ययन के महत्त्व में वृद्धि का एक कारण यह भी है कि देश की सार्वजनिक वित्त व्यवस्था का प्रत्येक अंग पर प्रभाव पड़ता है। सार्वजनिक वित्त का कार्य सरकार के लिए केवल वित्त एकत्रित करना ही नहीं है–अब उसे सामाजिक न्याय दिलाने, आर्थिक स्थिरता बनाये रखने, पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करने तथा आर्थिक विकास को बढ़ावा देने का भी एक शक्तिशाली साधन समझा जाता है। विकासशील देशों के आर्थिक विकास में भी लोक वित्त का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अत: स्पष्ट है कि अब सरकार आर्थिक विषयों में अत्यधिक हस्तक्षेप करने लगी है।

क्या आप जानते हैं 1930 की महामन्दी के कारण लोक वित्त को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया।

संक्षेप में हम लोक वित्त के महत्त्व का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते है–

(1) साधनों के वितरण में महत्त्व,

(2) आय और सम्पत्ति के वितरण में महत्त्व,

(3) आर्थिक स्थिरता के सन्दर्भ में महत्त्व तथा

(4) आर्थिक विकास हेतु साधन जुटाने में महत्त्व।

(1) **साधनों के वितरण में महत्त्व** (Importance of Publilc Finance in Allocation of Resources)– साधनों के वितरण से आशय इनके सर्वश्रेष्ठ चुनाव से है जिससे स्पष्ट होता है कि समाज की भूमि, श्रम, पूँजीगत वस्तुओं व अन्य साधनों का किस प्रकार प्रयोग किया जाये– किन वस्तुओं का उत्पादन कितनी मात्रा में किया जाये तथा उत्पादन की किन-किन रीतियों का प्रयोग किया जाये, इत्यादि। प्रत्येक देश के पास निश्चित मात्रा में आर्थिक साधन उपलब्ध होते हैं। इनमें प्राकृतिक साधन, जैसे–भूमि, वन, खनिज सम्पदा व शक्ति स्रोत आदि भी सम्मिलित किये जाते हैं। प्राकृतिक साधनों के विषय में यह उल्लेखनीय है कि इनकी उपलब्धि मात्र से ही किसी देश के आर्थिक विकास का स्तर ऊँचा नहीं हो जाता अपितु आर्थिक विकास हेतु इन साधनों का विदोहन भी आवश्यक है। इनके अतिरिक्त किसी देश के प्राकृतिक व मानवीय संसाधनों के द्वारा कृषि उद्योग, यातायात व व्यापार आदि आर्थिक क्रियाओं का संचालन होता है। यही देश की अर्थव्यवस्था के अंग हैं। इन्हीं पर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था निर्भर करती है। स्पष्ट है कि आर्थिक क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य उपलब्ध साधनों का बुद्धिमत्तापूर्ण तरीके से उचित विदोहन करना है। इसका ज्ञान निम्न विवरण से भी हो सकता है–

(*i*) **आर्थिक संरचना का विकास** (Development of Economic Structure)–सरकार अपनी बजट नीति द्वारा आर्थिक संरचना के विकास हेतु धन की व्यवस्था कर सकती है। इसके अन्तर्गत रेलवे, विद्युत, सड़क, यातायात, स्कूल, अस्पताल, बहुद्देश्यीय योजनाओं आदि का विकास आता है। इसके अभाव में आर्थिक प्रगति व्यवस्थित रूप से नहीं हो सकती परन्तु इन योजनाओं पर बड़ी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है। परन्तु इनके शीघ्र व प्रत्यक्ष प्रतिफल की भी आशा नहीं की जा सकती। अत: व्यक्तिगत उद्यमी इस प्रकार के विनियोगों में रुचि नहीं रखते। अत: राज्य का कर्त्तव्य है कि वह आर्थिक संरचना के भार को वहन करे, पूँजी निर्माण की दर को तीव्र करे व भार मितव्ययिताओं को उत्पन्न करे।

(*ii*) **जनसंख्या वृद्धि की दर** (Rate of Population Growth)–द्रुत आर्थिक विकास तभी सम्भव हो सकता है जब जनसंख्या वुद्धि दर की अपेक्षा रोजगार के अवसरों और आय में वृद्धि की दर बहुत अधिक हो। अत: सरकार अपनी राजकोषीय नीति में परिवार नियोजन पर अधिक महत्त्व देते हुए जनसंख्या को नियन्त्रित करती है।

(*iii*) **पिछड़े क्षेत्रों का विकास** (Development of Backward Areas)–यदि पिछड़े क्षेत्रों में कर सम्बन्धी छूटें एवं रियायतें प्रदान की जाएँ तो घने बसे क्षेत्रों में लगे आर्थिक साधनों को पिछड़े क्षेत्रों की ओर मोड़ा जा सकता

नोट

है। इससे जहाँ पिछड़े क्षेत्रों की उन्नति और विकास में सहायता मिलेगी वहाँ सन्तुलित आर्थिक विकास भी सम्भव हो सकेगा।

(*iv*) **सार्वजनिक व निजी उद्योग का विकास** (Development of Public and Private Industries)– वर्तमान समय में राज्य देश में सुदृढ़ औद्योगिक ढाँचा तैयार करने हेतु स्वयं आधारभूत उद्योगों की स्थापना व उनका विकास करता है। इसके अतिरिक्त सरकार व्यक्तिगत विनियोगों को भी अपनी राजस्व नीति द्वारा प्रोत्साहित कर सकती है, जैसे–(A) व्यक्तिगत उद्योगों पर कर भार कम करना, (B) इनको विभिन्न औद्योगिक सुविधाएँ प्रदान करना, (C) व्यक्तिगत उद्योगों को सस्ती ऋण सुविधाएँ मिलना व इस हेतु विशिष्ट वित्तीय संस्थाएँ खोलना आदि।

(*v*) **सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी गतिविधियाँ** (Social Security Activities)–अनेक विकसित देशों में क्रमिक सुरक्षा, उदाहरणार्थ–स्वास्थ्य बीमा, बेकारी बीमा योजना, वृद्धावस्था पेन्शन, मातृत्व लाभ आदि कार्यक्रमों पर बहुत बड़ी मात्रा में सार्वजनिक व्यय किया जाता है जिसका अर्थव्यवस्था पर प्रत्यक्ष तथा परोक्ष महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उपलब्ध साधनों के पूर्ण उपयोग व उचित आवण्टन के क्षेत्र में राजस्व का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

(2) **आय और सम्पत्ति के वितरण में महत्त्व** (Importance of Public Finance in Distribution of Income and Wealth)–आज अधिकांश देशों में आय व सम्पत्ति के वितरण में असमानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं एक ओर तो कुछ मुट्ठी भर लोग धन से परिपूर्ण रहते हैं और अनेक विलासितापूर्ण कार्यों में अपनी आय का दुरुपयोग करते हैं, जबकि दूसरी ओर जनसाधारण अथाह दरिद्रता व विपत्ति के नीचे दबे कराहते हैं। स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था वे अन्तर्गत यदि आर्थिक शक्तियों को नियन्त्रित न किया जाये तो आय व सम्पत्ति के वितरण की समस्या और भी गम्भीर हो जाती है। आय की असमानता नैतिक, सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक सभी दृष्टिकोणों से अवांछनीय है। धन के वितरण की असमानता को दूर करने से समाज को अधिकतम आर्थिक कल्याण प्राप्त हो सकेगा। आय की असमानता के कारण देश में उत्पादन का ढाँचा धनी वर्ग के अनुकूल हो जाता है। उत्पादन का अधिकांश भाग अनिवार्य आवश्यकताओं की वस्तुओं के बजाय विलासिता की वस्तुओं का होता है। अत: समाज को अधिकतम सामाजिक सन्तोष प्राप्त नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त आय की असमानता अन्तत: बेरोजगारी को जन्म देती है, जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या के विशाल वर्ग के लिए आर्थिक असुरक्षा उत्पन्न हो जाती है, बचत व विनियोग का सन्तुलन सम्भव नहीं हो पाता और देश की अर्थव्यवस्था अनुकूलतम स्थिति में कार्य नहीं कर पाती। अब हमें यह अध्ययन करना होगा कि आय व सम्पत्ति के वितरण की विषमताओं को कम करने हेतु लोक वित्त कहाँ तक उपयोगी होगा। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री धन के वितरण के लिए करारोपण को सामान्यत: विरोध की दृष्टि से देखते थे। उनका कहना था कि करारोपण का एकमात्र उद्देश्य राज्य के लिए आय प्राप्त करना है। परन्तु वर्तमान समय में यह बात पूर्ण रूप से स्वीकार की जा रही है कि राजकोषीय नीतियाँ धन के वितरण की असमानताओं को दूर करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकती हैं। सार्वजनिक व्यय द्वारा जहाँ गरीबों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाकर वितरण की विषमताओं में कमी की जा सकती है वहाँ करारोपण द्वारा धनी व्यक्तियों की आय का स्तर नीचा करके भी इस उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार आज धन के वितरण में वांछित समानता लाने की दो मुख्य विधियाँ हैं–

(*i*) **सार्वजनिक व्यय** (Public Expenditure)–यह आय को निर्धन व्यक्तियों के हित में पुनर्वितरित करने का साधन हो सकता है। यदि सरकार अपनी आय का अधिकतम भाग इस प्रकार व्यय करती है जिससे निर्धनों की अधिक सहायता होती है तो वास्तविक आयों में कम असमानता होगी। अत: सरकार को निम्न आय के लोगों पर अधिक व्यय करना चाहिए। इस विषय में सरकार को चाहिए कि वह–(अ) सामाजिक सेवाओं, जैसे–नि:शुल्क शिक्षा, चिकित्सा व मकान की व्यवस्था आदि गरीबों के लिए करे। (ब) बेरोजगारी, बीमारी, वृद्धावस्था की कठिनाइयों से गरीबों की रक्षा करें। (स) सरकार द्वारा अनिवार्य वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि हेतु विशेष आर्थिक सहायता प्रदान की जानी चाहिए। (द) यदि सरकार अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के सन्तुलित विकास कार्यक्रम को शुरू कर दे तो यह नीति जीवन स्तर को ऊँचा उठाने और आय की असमानताओं को दूर करने में और भी सफल होगी।

नोट

(*ii*) **करारोपण** (Taxation)–करारोपण भी धन की असमानताओं को दूर करने का महत्त्वपूर्ण साधन है। सर्वप्रथम जर्मन अर्थशास्त्री वैगनर ने करारोपण के माध्यम से धन की असमानताओं को दूर करने का जोरदार समर्थन किया है। आय-कर (Income Tax) वेतन और मजदूरियों में अन्तर के कारण आय की असमानता को कम करता है, जबकि उत्तराधिकार कर (Inheritance Tax) विशेष रूप से सम्पत्तियों के अन्तर के कारण उत्पन्न असमानताओं को कम करता है। अत: प्रगतिशील व प्रत्यक्ष करों के द्वारा अपेक्षाकृत धनी वर्ग के लागों से निर्धन वर्ग की ओर धन का हस्तान्तरण किया जा सकता है, क्योंकि धनी व्यक्तियों से कर वसूल करके उसे ऐसी सामाजिक सेवाओं पर व्यय किया जा सकता है जिसका वास्तविक लाभ निर्धन वर्ग के लोगों को हो। यद्यपि सार्वजनिक व्यय और करारोपण साथ-साथ चलते हैं, फिर भी धन के वितरण की असमानता को दूर करने में करारोपण का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि करारोपण केवल धनी व्यक्तियों की आय का स्तर नीचा करने के लिए ही आवश्यक नहीं है अपितु सरकारी व्यय के कार्यक्रमों के लिए धनराशि प्राप्त करने के लिए भी बहुत आवश्यक है। प्रगतिशील कर आय की असमानता को कम करते हैं जबकि प्रतिगामी कर आय की असमानता को बढ़ाते हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजस्व द्वारा आय और सम्पत्ति के समान वितरण की दिशा में जो प्रयास किये जाते हैं उनका बचत और विनियोग पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है और देश की अर्थव्यवस्था को समुचित ढंग से विकसित करने में सहायता मिलती है तथा देश के आर्थिक व सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है।

(3) **आर्थिक स्थिरता के सन्दर्भ में महत्त्व** (Importance of Economic Stability)–आर्थिक स्थिरता का तात्पर्य उत्पादन, रोजगार व मूल्य में होने वाले परिवर्तनों से है। उत्पादन, रोजगार और मूल्यों में होने वाली वृद्धि देश की अर्थव्यवस्था के ऊपर जाने के प्रतीक माने जाते हैं। इसके विपरीत उत्पादन में कमी, बेरोजगारी व मन्दी देश की अर्थव्यवस्था को मन्दी की ओर ले जाते हैं। अत: पूर्ण रोजगार अथवा आर्थिक स्थिरता हेतु लोक वित्त के महत्त्व की विवेचना हम इस प्रकार कर सकते हैं कि इसके द्वारा उत्पादन, मूल्यों व रोजगार पर किस प्रकार प्रभाव डाला जा सकता है ताकि निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति हो सके।

यहाँ पर पूर्ण रोजगार और मूल्य-स्थिरता के अर्थों को समझना आवश्यक हो जाता है। सर विलियम बेवरिज के अनुसार, "रोजगार का विचार उस विशेष स्थिति की ओर संकेत करता है जिसमें बेकार व्यक्तियों की संख्या की तुलना में काम करने के लिए अधिक खाली स्थान प्राप्त होते हैं।" अमरीकी आर्थिक संघ के अनुसार, "पूर्ण रोजगार का अर्थ यह है कि उन सभी योग्यता प्राप्त व्यक्तियों को जो प्रचलित वेतन दरों पर काम चाहते हैं, बिना अधिक विलम्ब हुए उत्पादक कार्यों में काम प्राप्त हो सके।" इसी प्रकार मूल्य स्थिरता का अर्थ यह है कि मूल्यों के सामान्य स्तर में तीव्र अल्पकालिक परिवर्तनों का न होना।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का यह मत था कि समाज में सदा पूर्ण रोजगार की स्थिति बनी रहती है। उनका यह विचार जे. बी. से के प्रसिद्ध कथन "पूर्ति स्वत: माँग की जननी होती है" पर आधारित था। अत: अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी या अत्युपादन हो ही नहीं सकता क्योंकि जो कुछ भी पैदा होता है उसका मुद्रा द्वारा विनिमय अवश्य हो जाता हैं लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के उपरोक्त विचारों का जोरदार खण्डन किया है और यह स्पष्ट किया है कि देश में निजी उपक्रम के प्रयासों से ही सदा पूर्ण रोजगार की स्थिति नहीं पाई जाती। कीन्स के अनुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सदा ही उतार-चढ़ाव आया करते हैं। कभी अतिपूर्ण रोजगार की स्थिति आती है तो कभी अपूर्ण रोजगार की स्थिति। अगर किसी विशेष समय पूर्ण रोजगार की स्थिति पाई जाती है तो यह एक संयोग की ही बात होती है।

पूर्ण रोजगार और उससे सम्बन्धित तथ्य अर्थात् उत्पादन रोजगार एवं मूल्य को प्रभावित करने वाला एक आधारभूत तत्व प्रभावपूर्ण माँग समाज में होने वाले कुल उत्पादन के मूल्य को सूचित करती है। इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय उत्पादन का कुल मूल्य और उद्योगपतियों द्वारा माल की बिक्री से प्राप्त होने वाली आय में कोई अन्तर नहीं होता। अर्थात् कुल उत्पादन राष्ट्रीय आय के बराबर होता है। अत: उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिक स्थिरता एक देश की अर्थव्यवस्था को काफी सीमा तक प्रभावित करती है।

नोट

(4) **आर्थिक विकास हेतु साधन जुटाने में महत्त्व** (Importance in collection of resources for Economic Development)–आर्थिक विकास हेतु साधन जुटाने में लोक वित्त का क्या महत्त्व है, इसे हम निम्न विवरण से स्पष्ट कर सकते हैं–

(*i*) **पूँजी निर्माण** (Capital formation)–किसी देश के आर्थिक विकास में पूँजी निर्माण का केन्द्रीय महत्त्व होता है। वस्तुत: अर्द्धविकसित देशों में व्याप्त निर्धनता के उचित चक्र को विनियोग के बिन्दु से टाला जा सकता है और जिसके कारण अनुकूल परिवर्तनों की सम्भावना हो जाती है। अन्तत: लोक वित्त की कार्यवाहियों का उद्देश्य यह होना चाहिए कि उपभोग व अन्य गैर विकास कार्यों की ओर से पूँजी निर्माण अर्थात् बचत व विनियोग की ओर साधनों का अन्तरण हो। सरकार पूँजी निर्माण में वृद्धि करने के लिए कई प्रकार से सहायता कर सकती है। डॉ. आर. एन. त्रिपाठी के अनुसार, चूँकि अर्द्धविकसित देशों में बचत की दर अत्यन्त कम होती है, अत: इन देशों में बढ़ती हुई बचत दर प्राप्त करने हेतु ताकि विनियोग अधिक से अधिक हो, सरकार निम्नलिखित ढंग अपना सकती है–

(अ) प्रत्यक्ष भौतिक नियंत्रण, (ब) वर्तमान करों की दर में वृद्धि करना,

(स) सार्वजनिक उद्योगों से बचत प्राप्त करना, (द) सार्वजनिक ऋण,

(य) घाटे का बजट

(अ) **प्रत्यक्ष भौतिक नियन्त्रण** (Direct physical Control)–यह विशिष्ट उपभोग व अनुत्पादक विनियोजन को घटाने में अत्यन्त प्रभावशाली होता है। यद्यपि अर्द्धविकसित देशों में उसका प्रशासन असुविधाजनक होता है फिर भी प्रत्यक्ष भौतिक नियन्त्रण राजकोषीय नीति का आवश्यक अंग होता है।

(ब) **वर्तमान करों की दर में वृद्धि** (Increase in the rate of present taxes)–करों को लगाना तथा वर्तमान करों की दर में वृद्धि जो स्पष्ट रूप से प्रगतिशील भी कही जा सकती है, अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। कर की रचना निम्न प्रकार से हो सकती है–(क) धनी वर्ग के उन साधनों को जो निष्क्रिय पड़े हों अथवा जिनका राशि की दृष्टि से लाभप्रद उपभोग न होता हो–आय कर, सम्पत्ति कर आदि लगाकर प्राप्त किया जा सकता है, सरकारी वस्तुओं पर कर लगाया जा सके जिनकी माँग बेलोच हो, (ख) कृषक वर्ग की बढ़ती आय में से कर लगा देना आवश्यक होता है। इस हेतु भूमि तथा अन्य प्रकार की सम्पत्तियों पर करारोपण किया जा सकता है।

(स) **सार्वजनिक उद्योगों से बचत प्राप्त करना** (To collect the savings from public enterprises)–विकासशील देशों में अधिक लागत के कारण उद्योगों में कम बचत प्राप्त होती है फिर भी यदि सार्वजनिक उद्योगों को दक्षता व कुशलता से चलाया जाये तो उनसे भी अतिरेक प्राप्त किया जा सकता है।

(द) **सार्वजनिक ऋण** (Public debt)–ऐच्छिक बचत को सरकार ऋण के रूप में प्राप्त कर सकती है। लोगों की बचत को बढ़ाने के लिए सरकारी ऋण पत्र कर सुरक्षित साधन है। संस्थाएँ भी अपने धन को सरकारी ऋण-पत्रों में लगा सकती हैं। चूँकि अर्द्धविकसित देशों में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम होती है, इसलिए सार्वजनिक ऋणों का क्षेत्र अत्यधिक सीमित होता है, परन्तु इसका यह आशय नहीं है कि सार्वजनिक ऋण-पत्रों को क्रय करने हेतु देश में किसी प्रकार की बचत नहीं होती। इन देशों में लघु बचतों का विशेष महत्त्व होता है। वर्तमान समय में बहुत-सी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ जैसे, विश्व बैंक व अन्तराष्ट्रीय विकास संघ आदि भी विकासशील देशों को पर्याप्त ऋण प्रदान करती हैं।

(य) **घाटे का बजट** (Deficit Budget)–घाटे की वित्त व्यवस्था की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब कि सरकार करों व जनता से लिए जाने वाले ऋणों व आय के अन्य साधनों द्वारा जितना प्राप्त करती है उससे अधिक व्यय करती है। सरकार को घाटे कि वित्त व्यवस्था का उपभोग सतर्कता के साथ करना चाहिए। इस विधि का अत्यधिक उपयोग अर्थव्यवस्था में स्फीतिजनक स्थितियाँ उत्पन्न करके अर्थव्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर सकता है।

(*ii*) **उत्पादन के स्वरूप में उत्पादन करके** (Change in the production structure)–सार्वजनिक क्षेत्र के लिए साधनों को गतिशील करने में राजकोषीय नीति बड़ी प्रेरक होती है। सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करके सरकार ऐसे उद्योगों का विस्तार कर सकती है जिन्हें वह राष्ट्रीय हित की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझती है। इसके साथ ही

नोट

लोक वित्त सम्बन्धी कार्यवाहियों का उद्देश्य व्यक्तिगत विनियोग को वांछित दिशाओं की ओर गतिशील करने के लिए भी किया जा सकता है।

(*iii*) **बेरोजगारी को दूर करना** (To remove the unemployment)–अल्प-विकसित देशों में बेरोजगारी व अदृश्य बेरोजगारी की समस्याएँ बहुत विकट होती हैं। पूर्ण विकसित देशों में प्राय: एक अल्पकालीन समस्या होती है जो व्यापार-चक्रों के प्रभाव से उत्पन्न होती है। परन्तु विकासशील देशों में बेरोजगारी एक सर्वव्यापी समस्या होती है, जिसका समाधान एक दीर्घकालीन विकास नीति द्वारा ही हो सकता है। अत: देश में करारोपण, सार्वजनिक व्यय व ऋण सम्बन्धी नीतियों के द्वारा विनियोग में वृद्धि करके रोजगार के अवसरों का विस्तार किया जा सकता है।

टास्क आर्थिक विकास हेतु साधन जुटाने में लोक वित्त का क्या महत्त्व है?

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

11. लोक वित्त किसमें विश्वास करता है?
    (अ) जन-कल्याण में (ब) स्व-कल्याण में
    (स) लाभ में (द) उपरोक्त सभी।
12. निजी वित्त का एकमात्र लक्ष्य क्या है?
    (अ) जन-कल्याण करना (ब) लाभ प्राप्त करना
    (स) नुकसान करना (द) उपरोक्त सभी।
13. आधुनिक अर्थशास्त्री सरकारी उधार को लोक वित्त की कौन-सी कार्यवाही मानते हैं?
    (अ) पूर्ण (ब) अपूर्ण
    (स) महत्त्वपूर्ण (द) संपूर्ण।
14. वैगनर कहाँ का अर्थशास्त्री था?
    (अ) भारत (ब) रूस
    (स) अमेरिका (द) जर्मन।
15. महामंदी कब हुई थी?
    (अ) 1930 में (ब) 1830 में
    (स) 2001 में (द) 1999 में।

1.8 सारांश (Summary)

- लोक वित्त का अर्थशास्त्र विशेष रूप से सामूहिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से सम्बन्धित है। इसमें हम उन आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करते हैं जो राज्य अथवा सार्वजनिक क्षेत्र में उठती हैं, जैसे निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों के बीच साधनों का विभाजन किस प्रकार किया जाता है तथा सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत सरकारी व्यय के विभिन्न साध्यों की सन्तुष्टि के लिए साधनों का आबंटन कैसे किया जाता है।
- सन् 1930 की गम्भीर आर्थिक मन्दी (Economic depression) तथा कीन्स द्वारा रोजगार के सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन तो अबन्ध नीति के लिए मौत की घंटी ही बन गई। कीन्स ने बताया कि राज्य को राजकोषीय क्रियाओं के द्वारा रोजगार में वृद्धि करना और उसे उच्च स्तर पर बनाये रखना सम्भव है।

नोट

- अल्पविकसित देशों में भी, सरकार का मुख्य लक्ष्य यह होता है कि देश का तीव्र गति से आर्थिक विकास हो तथा राष्ट्रीय उत्पादन का न्यायपूर्ण वितरण (equitable distribution) हो, और राजकोषीय नीति (fiscal policy) इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए महत्त्वपूर्ण अस्त्र बन सकती है।
- लोक वित्त का क्षेत्र तथा इसकी विषय-सामग्री स्थिर नहीं है, क्योंकि राज्य की धारणा (concept), राज्य के कार्यों तथा अर्थशास्त्र की समस्याओं में परिवर्तन होने के साथ ही साथ इसका भी निरन्तर विस्तार होता जा रहा है।
- लोक वित्त तथा निजी वित्त के बीच कई मामलों में मौलिक अन्तर पाया जाता है जैसे कि उद्देश्य, वित्त प्राप्ति के तरीके तथा साधनों की मात्रा आदि के मामलों में।
- लोक वित्त की प्राचीन विचारधारा संस्थापक आर्थिक सिद्धान्त (Classical Economic Theory) पर आधारित थी परन्तु बाद में इस सिद्धान्त में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते रहे हैं। अन्त में आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ जिसे 'कीन्स का पूर्ण रोजगार का सामान्य सिद्धान्त (Keyne's General Theory of Full Employment) कहा जाता है। इस सिद्धान्त के कारण लोक वित्त की प्राचीन धारणा में भी परिवर्तन हो गया है।
- कीन्स का 'रोजगार सिद्धान्त' इस सामान्य धारणा पर टिका है कि एक व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला व्यय दूसरे व्यक्ति की आय है।
- रोजगार का विचार उस विशेष स्थिति की ओर संकेत करता है जिसमें बेकार व्यक्तियों की संख्या की तुलना में काम करने के लिए अधिक खाली स्थान प्राप्त होते हैं।

1.9 शब्दकोश (Keywords)

- बजट (Budget)–आय-व्यय का लेखा-जोखा।
- राजकोषीय क्रियाएँ (Fiscal operations)–राजकोष की क्रियाएँ।
- मुद्रा-स्फीति (Inflation)–देश की व्यापारिक आवश्यकता से अधिक मुद्रा का प्रचलन।
- कराधान (Taxation)–कर लगाना।

1.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. लोक वित्त से आपका क्या अभिप्राय है?
2. आधुनिक राज्य के कार्यों का संक्षेप में वर्णन करें।
3. कराधान से आप क्या समझते हैं?
4. लोक वित्त एवं निजी वित्त में पाए जाने वाली समानताओं को लिखें।
5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें–

   (*a*) करारोपण (*b*) सार्वजनिक व्यय।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. व्यय	2. 'लोक'	3. राजकोषीय	4. 1776
5. 1930	6. सत्य	7. असत्य	8. सत्य
9. असत्य	10. सत्य	11. (अ)	12. (ब)
13. (स)	14. (द)	15. (अ)।	

नोट

Unit 2: अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त (Principles of Maximum Social Interest)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
2.1 अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धांत (The Principle of Maximum Social Interest)
2.2 अधिकतम सामाजिक लाभ (Maximum Social Interest)
2.3 सारांश (Summary)
2.4 शब्दकोश (keywords)
2.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धांत को समझने में।
- अधिकतम सामाजिक लाभ की जानकारी प्राप्त करने में।
- कर लगाते समय विचारणीय तथ्य से अवगत होने में।
- व्यय करते समय विचारणीय तथ्य को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

"लोक वित्त का सिद्धान्त" नामक वाक्यांश से आशय उस मूलभूत नियम (fundamental rule) से है, जिसके द्वारा राज्य की वित्तीय नीति का निर्धारण किया जाना चाहिए। इस मूलभूत नियम को ही अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त या अधिकतम शुद्ध सामाजिक लाभ का सिद्धान्त अथवा अधिकतम सामाजिक कल्याण का सिद्धान्त कहा जाता है। **प्रो. पीगू** अथवा **प्रो. डाल्टन** ऐसे दो विख्यात अर्थशास्त्री थे, जिन्हें लोक वित्त के इस सिद्धांत के प्रतिपादन तथा इसकी प्रसिद्धि का पूर्ण श्रेय दिया जा सकता है।

एडम स्मिथ जैसे प्राचीन अर्थशास्त्रियों का मत था कि राज्य की क्रियाएँ तथा कराधान की मात्रा कम से कम होनी चाहिए। एडम स्मिथ का ही अनुसरण करते हुए उनके प्रमुख फ्रांसीसी शिष्य **जे. बी. से** ने कहा कि **"वित्त की सब योजनाओं में सर्वोत्तम योजना है कम व्यय करना और सभी करों में सर्वोत्तम कर वह है जिसकी धनराशि सबसे कम हो।" एडम स्मिथ** तथा **रिकार्डो** का विचार था कि गैर-सरकारी व्यय 'उत्पादक' (productive) होता है और सरकारी व्यय 'अनुत्पादक' (unproductive)। इसी कारण इन अर्थशास्त्रियों का कहना था कि "प्रत्येक कर

नोट

एक बुराई (evil) है और प्रत्येक सरकारी खर्च अनुत्पादक है।" इसके विपरीत **प्रो. डाल्टन** ने दृढ़तापूर्वक यह कहा कि, "यह कहना सही नहीं है कि प्रत्येक कर स्वयं में एक बुराई है।" उदाहरण के लिए, नशीली औषधियों, मद्य तथा अन्य मादक पदार्थों पर यदि कर लगाये जाएँ, तो उससे ऐसे पदार्थों का, जो कि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं, उपभोग घटता ही है और इससे समाज का ठोस कल्याण भी होता है। डाल्टन ने सरकारी व्यय का भी समर्थन किया और इस प्राचीन विचारधारा का विरोध किया है कि यह अनुत्पादक होता है। **"अन्धविश्वासी व्यक्ति सभी प्रकार के सरकारी व्यय के बारे में पहले से ही पूर्वाग्रही** (biased) **बने होते हैं। किन्तु हमें स्पष्ट रूप से इस बात को मानकर चलना चाहिए कि किसी भी प्रकार का सरकारी व्यय अच्छा होता है।"** उदाहरण के लिए, कृषि, उद्योग, सार्वजनिक स्वास्थ्य शिक्षा तथा न्याय आदि पर किये गये सरकारी व्यय को इसलिए अनुत्पादक नहीं माना जा सकता क्योंकि ऐसा व्यय किसी न किसी प्रकार से आर्थिक व सामाजिक कल्याण में वृद्धि ही करता है। किन्तु साथ ही, **प्रो. डाल्टन** ने यह भी कहा कि, **"यह कहना भी सही नहीं है कि सभी प्रकार का सरकारी व्यय अच्छा होता है। उदाहरणतः अनावश्यक युद्धों पर किया जाने वाला सरकारी व्यय स्पष्टतः एक बुराई ही है।"** अब यह बात तो स्पष्ट ही है कि प्राचीन अर्थशास्त्रियों की यह धारणा कि प्रत्येक कर एक बुराई है और प्रत्येक सरकारी व्यय अनुत्पादक, आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा दृढ़ता से अस्वीकृत कर दी गई है। उनका विश्वास है कि किसी भी सरकारी व्यय की उत्पादकता (productivity) की आर्थिक कसौटी यह है कि वह व्यय कितना आर्थिक कल्याण उत्पन्न करता है। उदाहरणार्थ–शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर किया गया सरकारी व्यय विलासिता की वस्तुओं पर किये गये गैर-सरकारी व्यय से प्रायः अधिक उत्पादक होता है। इस प्रकार, लोक वित्त की कोई कार्यवाही यदि, सम्पूर्ण रूप से समाज तथा समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि करती है, तब तो उसे वाँछनीय माना जायेगा अन्यथा नहीं।

2.1 अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त (The Principle of Maximum Social Interest)

यह सिद्धान्त समाज के आर्थिक कल्याण (economic welfare) को, सम्पूर्ण रूप में (as a whole), अधिकतम करने की दृष्टि से लोक वित्त की कार्यवाहियों का निर्देशन करता है। सरकारी राजस्व (public revenue) तथा सरकारी व्यय (public expenditure) राज्य की दो महत्त्वपूर्ण वित्तीय कार्यवाहियाँ हैं। यह आवश्यक है कि राज्य की इन दोनों वित्तीय कार्यवाहियों का निर्देशन या नियमन किसी मूलभूत सिद्धान्त के द्वारा किया जाए ताकि उन कार्यवाहियों से अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त किया जा सके। प्रो. पीगू तथा प्रो. डाल्टन ऐसे दो विख्यात अर्थशास्त्री थे जो लोक वित्त के इस मूलभूत सिद्धान्त के प्रतिपादन तथा प्रसिद्धि के लिए उत्तरदायी थे।

अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त के अनुसार, राज्य की अपनी आय की प्राप्ति और धन का व्यय इस प्रकार करना चाहिए ताकि जनता के कल्याण में अधिकतम वृद्धि हो सके। जब सरकार कर लगाती है तो कुछ अनुपयोगिता या तुष्टिहीनता (disutility) उत्पन्न होती है। दूसरी ओर, जब सरकार धन व्यय करती है तो उपयोगिता या तुष्टिगुण (utility) में कुछ वृद्धि होती है। अतः सरकार को अपने आय-व्यय को इस प्रकार समायोजित करना चाहिए कि किसी तुष्टिगुण के अधिकतम बेशी (surplus) उत्पन्न हो तथा तुष्टिहीनता की मात्रा कम से कम हो। परन्तु यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि ऐसा करके सभी लोगों के व्यक्तिगत कल्याण में अधिकतम वृद्धि हो जाएगी, ऐसी बात नहीं है, बल्कि यह सम्भव हो सकता है कि उनमें से कुछ के कल्याण में और कमी हो जाए। परन्तु यदि बड़ी संख्या में लोगों के कल्याण में वृद्धि होती है तो यह माना जाएगा कि सम्पूर्ण रूप से समाज का शुद्ध कल्याण (net welfare) अधिकतम ही हुआ है। **प्रो. डाल्टन** ने इसे इन शब्दों में व्यक्त किया है कि, **"लोक वित्त की इन कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप, उत्पन्न किये जाने वाले धन की प्रकृति तथा मात्रा में और विभिन्न व्यक्तियों व वर्गों के बीच उस धन के वितरण में अनेक परिवर्तन होते हैं। प्रश्न यह है कि क्या ये परिवर्तन, समग्र रूप में, समाज पर लाभकारी प्रभाव छोड़ते हैं? यदि ऐसा है तब तो माना जाएगा कि लोक वित्त की कार्यवाहियाँ न्यायोचित हैं, अन्यथा नहीं। लोक वित्त की सर्वोत्तम व्यवस्था वह है जो अपने द्वारा सम्पादित की जाने वाली कार्यवाहियों के द्वारा अधिकतम सामाजिक लाभ उपलब्ध कराये।"**

नोट

2.1.1 सरकारी आय तथा व्यय की सीमा

(Extent of Public Revenue and Expenditure)

प्रो. डाल्टन ने इस बात की ओर भी संकेत किया कि सरकारी व्यय किस सीमा तक बढ़ाया जाये? सरकारी व्यय को विभिन्न उपयोगों में किस प्रकार बाँटा जाये? सरकारी आय को कैसे एकत्र किया जाए? तथा उसे विभिन्न वर्गों के बीच कैसे विभाजित किया जाये? **प्रो. डाल्टन** के ही शब्दों में, "सरकारी व्यय प्रत्येक दिशा में ठीक उस सीमा तक किये जाने चाहिए कि जिससे किसी भी क्षेत्र में इस व्यय की थोड़ी-सी और वृद्धि से समाज को प्राप्त होने वाले लाभ में, और इसके विपरीत कराधान अथवा अन्य सरकारी आय के अन्य किसी साधन में की जाने वाली थोड़ी-सी भी वृद्धि से होने वाली हानि में, समान सन्तुलन स्थापित किया जा सके। यह नियम सरकारी व्यय तथा सरकारी आय दोनों की ही एक आदर्श सीमा प्रस्तुत करता है।" इसका अर्थ है कि लगाये जाने वाले कर की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से जनता द्वारा किये जाने वाले त्याग (sacrifice) का भार तो बढ़ता जाएगा, किन्तु उस कर के खर्च से जनता को प्राप्त होने वाले लाभ (benefit) की मात्रा बराबर घटती जायेगी। इस प्रकार कर लगाने तथा उसे खर्च करने के सिलसिले में एक बिन्दु ऐसा आ पहुँचेगा जहाँ कि राज्य द्वारा खर्च किये जाने वाले धन की किसी इकाई (unit) से प्राप्त होने वाला लाभ, सरकार द्वारा लगाये जाने वाले कर की किसी इकाई के कारण जनता द्वारा किये जाने वाले त्याग के ठीक बराबर होगा। यह वह स्थिति है कि जब सरकार को आय तथा व्यय के सम्बन्ध में अपना बढ़ता हुआ कदम रोक देना चाहिए क्योंकि यही वह बिन्दु (point) है कि जिस पर सीमान्त त्याग (marginal sacrifice) सीमान्त लाभ (marginal benefit) के बराबर होता है। सरकार के वित्तीय कार्य की यही इष्टतम या अनुकूलतम सीमा (optimum limit) है। इस प्रकार, सरकारी व्यय उस सीमा तक किया जाना चाहिए जहाँ तक कि सरकारी खर्च से प्राप्त होने वाला सीमान्त तुष्टिगुण, कराधान या सरकारी आय के कारण होने वाली सीमान्त तुष्टिहीनता (marginal disutility) के ठीक बराबर हो।

उदाहरण–अधिकतम सामाजिक कल्याण को निम्न उदाहरण द्वारा आसानी से समझाया जा सकता है–

मुद्रा की इकाई	कर की प्रत्येक इकाई से त्याग	व्यय की प्रत्येक इकाई से सन्तुष्टि
1	5	16
2	7	12
3	9	9
4	12	7
5	16	5
6	20	3

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि समाज पर कर की प्रत्येक इकाई भार में वृद्धि करने से सीमान्त त्याग बढ़ता जाता है। इसके विपरीत सार्वजनिक व्यय की प्रति अतिरिक्त इकाई से समाज के लिए इसकी उपयोगिता पहले की अपेक्षा कम होती जाती है। यहाँ मुद्रा की तीसरी इकाई पर सीमान्त सामाजिक त्याग तथा सीमान्त सामाजिक लाभ बराबर है अर्थात् 9 इकाई। यहीं पर कर तथा सार्वजनिक व्यय की सीमा निश्चित हो जायेगी।

यह बात आगे दिये गये रेखाचित्र द्वारा भी स्पष्ट की गयी है जिसमें SS′ रेखा त्याग या तुष्टिहीनता की वक्र रेखा है और BB′ रेखा लाभ या तुष्टिगुण की वक्र रेखा (benefit or utility curve) है। ये दोनों वक्र रेखाएँ P बिन्दु पर एक-दूसरे को काटती हैं। इसके अतिरिक्त OX रेखा खर्च किये गये धन की मात्रा को प्रकट करती है तथा खड़ी रेखा (OY) किये गये त्याग (sacrifice) अथवा खर्च किये गये धन होने वाले लाभ की मात्रा को प्रदर्शित करती है।

नोट

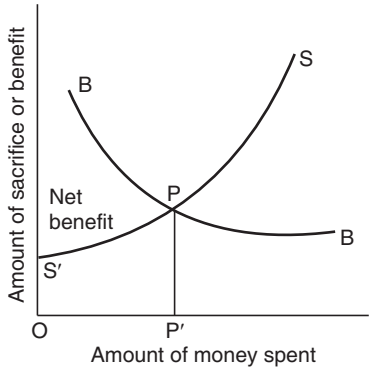

चित्र-1

लाभ की वक्र रेखा BB द्वारा घेरे गये क्षेत्र में से यदि त्याग की वक्र रेखा (sacrifice curve) SS′ द्वारा घेरे गये क्षेत्र को घटा दिया जाये तो वह शुद्ध लाभ (net benefit) बचा रहता है जो OP′ के बराबर खर्च करने से प्राप्त होगा। OP′ खर्च P बिन्दु पर अनुकूलतम या इष्टतम स्थिति में है क्योंकि इस बिन्दु पर धन की अन्तिम इकाई द्वारा प्राप्त तुष्टिगुण धन की अन्तिम इकाई द्वारा खोये गये तुष्टिगुण के बराबर है। त्याग की वक्र रेखा SS′ ऊपर उठती हुई वक्र रेखा है क्योंकि सरकारी व्यय के लिए प्राप्त किये जाने वाले धन की प्रत्येक इकाई के साथ ही त्याग की मात्रा बढ़ती जाती है। किन्तु इसके विपरीत, लाभ की वक्र रेखा BB′ नीचे गिरती हुई वक्र रेखा है, क्योंकि ज्यों-ज्यों व्यय बढ़ता है त्यों-त्यों उसकी प्रत्येक इकाई के साथ ही उससे प्राप्त होने वाला लाभ घटता जाता है। बिन्दु P, जहाँ कि दोनों वक्र रेखाएँ परस्पर मिलती हैं, राज्य की वित्तीय क्रिया की अनुकूलतम सीमा को प्रकट करता है। यही वह बिन्दु है जहाँ कि किया गया सीमान्त त्याग प्राप्त किये गये सीमान्त लाभ के बराबर होता है।

अधिकतम सामाजिक लाभ सिद्धान्त की व्याख्या कुल सामाजिक त्याग तथा कुल सामाजिक लाभ वक्र द्वारा भी स्पष्ट की जा सकती है। अधिकतम सामाजिक लाभ उस बिन्दु पर प्राप्त होगा जहाँ कुल सामाजिक लाभ तथा कुछ सामाजिक त्याग का अन्तर सबसे अधिक हो।

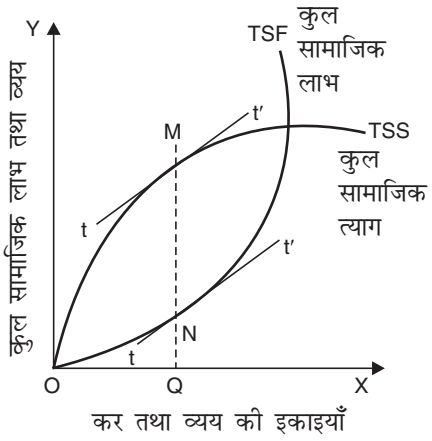

चित्र-2

चित्र-2 से TSB वक्र सार्वजनिक व्यय से प्राप्त कुल सामाजिक लाभ को दर्शाता है जिसका ढाल ऊपर की ओर उठता हुआ प्राप्त होता है। यह वक्र यह दर्शाता है कि जैसे-जैसे सार्वजनिक में वृद्धि होती जाती है कुल सामाजिक लाभ बढ़ता जाता है। किन्तु एक बिन्दु के बाद घटने लग जाता है। इसके विपरीत TSS वक्र कर से उत्पन्न कुल सामाजिक त्याग को प्रदर्शित करता है जो यह दर्शाता है कि कर की मात्रा के साथ कुल त्याग बढ़ता जाता है किन्तु एक बिन्दु के बाद कुल त्याग बहुत तीव्र गति से बढ़ने लग जाता है।

नोट

यहाँ TSB तथा TSS वक्र का अन्तर शुद्ध सामाजिक लाभ प्राप्त होगा जो यहाँ MN से दर्शाया गया है। अत: सरकार को OQ मात्रा में व्यय लगाना चाहिए ताकि अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके।

क्या आप जानते हैं अधिकतम सामाजिक लाभ सिद्धान्त की व्याख्या कुल सामाजिक त्याग तथा कुल सामाजिक लाभ वक्र द्वारा भी की जा सकती है।

2.1.2 साधनों का बँटवारा (Distribution of Resources)

विभिन्न उपयोगों (uses) के बीच साधनों का बंटवारा इस प्रकार किया जाना चाहिए कि संतुष्टि का सीमांत प्रतिफल (marginal return of satisfaction) सभी उपयोगों में एक समान हो। उदाहरण के लिए, युद्धपोतों तथा निर्धनों की सहायता की मदों के बीच खर्च का बंटवारा इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उनमें से प्रत्येक पद पर लगाये गये अन्तिम शिलिंग से सन्तुष्टि का समान प्रतिफल प्राप्त हो। यही से सम सीमांत तुष्टिगुण (Equi-marginal utility) या अधिकतम संतुष्टि (maximum satisfaction) का यह सिद्धांत है जो लोक वित्त में लागू किया जाता है। फिर, मान लीजिए कि कृषि पर किये गये खर्च सीमांत तुष्टिगुण प्रतिरक्षा (defence) पर किये गये खर्च के सीमांत तुष्टिगुण से अधिक है तो प्रतिरक्षा पर किये गये खर्च के मुकाबले कृषि पर किये गये खर्च से अधिक संतुष्टि प्राप्त हो रही है। इस स्थिति में, साधनों को प्रतिरक्षा से कृषि की ओर को स्थानान्तरित करना वांछनीय होगा। यह स्थानान्तरण उस समय तक होना चाहिए, जब तक कि दोनों दिशाओं से प्राप्त होने वाला सीमांत तुष्टिगुण बराबर न हो जाये।

2.1.3 व्यय करते समय विचारणीय तथ्य

(1) प्रत्येक व्यय से सीमांत उपयोगिता समान रहनी चाहिए। यदि शिक्षा पर किये गये व्यय से सीमांत उपयोगिता चिकित्सा पर किये गये व्यय से सीमांत उपयोगिता से अधिक है तो शिक्षा पर अधिक व्यय करना होगा। सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन आदि पर व्यय इस प्रकार किया जाये कि सबसे समान सीमांत उपयोगिता प्राप्त हो।

(2) व्यय ऐसा हो कि उत्पादन बढ़े। सड़कों, रेलों, कुओं, मनोरंजन के साधनों, विद्यालयों तथा चिकित्सालयों आदि पर व्यय उचित है। प्रतिरक्षा पर व्यय अनुत्पादक है, परन्तु आवश्यक है क्योंकि समाज को सुरक्षित रखना है, देश को आन्तरिक तथा बाहरी झगड़ों से बचाना है।

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण

चित्र-3 में AA वक्र द्वारा कृषि पर किये गये सार्वजनिक व्यय से प्राप्त सीमांत सामाजिक लाभ को दर्शाया गया है। इसके विपरीत DD वक्र सुरक्षा पर किये गये सार्वजनिक व्यय से प्राप्त सीमांत व्यय सामाजिक लाभ बताता है।

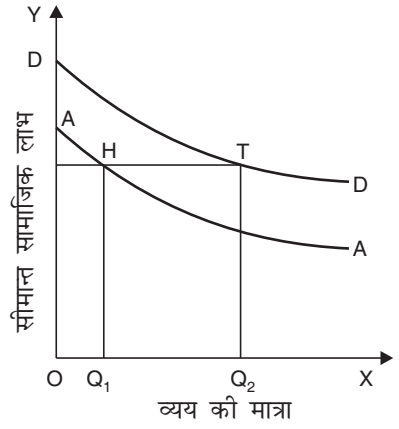

चित्र-3

नोट

अधिकतम सामाजिक लाभ उस बिन्दु पर प्राप्त होगा जहाँ दोनों मदों से प्राप्त सीमांत सामाजिक लाभ के बराबर हो। चित्र में दोनों से प्राप्त सीमांत सामाजिक लाभ की स्थिति। $HQ_1 = KQ_2$ होगा। अत: कृषि पर OQ_1 तथा सुरक्षा पर OQ_2 मात्रा में व्यय किया जाये तो दोनों से सीमांत सामाजिक लाभ समान मात्रा में प्राप्त होगा और यही अधिकतम सामाजिक लाभ होगा।

2.1.4 कर लगाते समय विचारणीय तथ्य

(1) कर लगाते समय सरकार को देखना चाहिए कि कर उन व्यक्तियों पर लगे जिनमें कर देने की क्षमता हो। कर का भार विभिन्न व्यक्तियों पर समान पड़े।

(2) कर लगाने से समाज की उत्पादन शक्ति कम न हो जाये तथा पूँजी के निर्माण में बाधा न पड़े।

(3) धनी व्यक्ति के पास धन के अधिक होने से धन की सीमांत उपयोगिता घटती जाती है तथा कर देते समय उसे अधिक त्याग नहीं करना पड़ता। अत: धनी व्यक्तियों पर निर्धनों की अपेक्षा अधिक दर से कर लगे जिससे त्याग बराबर हो। उदाहरणार्थ X, Y, Z तीन व्यक्ति हैं, इनकी आर्थिक स्थिति भिन्न है। यदि इन तीन व्यक्तियों से एक समान कर वसूल किया जाता है तो उनका त्याग इस प्रकार होता है जैसा कि आगे सारणी में दिखाया गया है–

रुपयों की इकाइयाँ	X	त्याग Y	Z
1 रुपया कर देने पर	10	15	20
2 रुपये कर देने पर	15	20	25
3 रुपये कर देने पर	20	25	32
4 रुपये कर देने पर	26	32	40

त्याग को समान करने के लिए X से 3 रुपये, Y से 3 रुपये तथा Z से 1 रुपया कर के रूप में वसूल करना चाहिए जो चित्र नं. 4 में स्पष्ट हो जाता है।

2.1.5 कराधान के भार का वितरण (Distribution of Burden of Taxation)

प्रो. पीगू का कहना था कि विभिन्न स्त्रोतों के बीच कराधान के भार का वितरण न्यूनतम कुल त्याग (least aggregate sacrifice) के सिद्धान्त के अनुसार किया जाना चाहिए। अन्य शब्दों में, कराधान के भार को विभिन्न स्त्रोतों के बीच इस प्रकार बाँटा जाना चाहिए कि प्रत्येक स्त्रोत (source) का सीमांत त्याग बराबर हो। **प्रो. पीगू** के ही शब्दों में, **"यदि न्यूनतम कुल त्याग की स्थिति लानी है तो करों को इस प्रकार बाँटा जाना चाहिए कि करों के रूप में अदा किये धन का सीमांत तुष्टिगुण सभी करदाताओं के लिए समान हो।"** उदाहरण के लिए, यदि A द्वारा अदा किये गये रुपये की अन्तिम इकाई का तुष्टिगुण या उपयोगिता (utility) B द्वारा अदा किये गये रुपये की अन्तिम इकाई के तुष्टिगुण से कम हो, तो इसमें B पर कर का भार कम किया जाना चाहिए और A के कर-भार में वृद्धि की जानी चाहिए। यह प्रक्रिया उस समय तक जारी रहनी चाहिए तब तक कि A और B दोनों के ही अन्तिम रुपये का सीमांत त्याग बराबर न हो जाए।

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण

चित्र-4 में AA_1 व BB_1 वक्र A तथा B व्यक्तियों द्वारा कर अदा करने से सीमांत सामाजिक त्याग को प्रदर्शित करते है। ये वक्र ऊपर की ओर उठते हुए होते हैं जो यह दर्शाते हैं कि जैसे-जैसे कर की मात्रा एकत्रित की जायेगी, सीमांत सामाजिक त्याग की मात्रा बढ़ती जायेगी। कुल त्याग उसी अवस्था में न्यूनतम होगा जहाँ A तथा B का सीमांत सामाजिक त्याग बराबर होगा। इस स्थिति में सरकार A व्यक्ति पर OQ_2 तथा B व्यक्ति पर OQ_1 के बराबर कर लगाये क्योंकि यहाँ A द्वारा किया गया सीमांत सामाजिक त्याग B द्वारा किये गये सीमांत सामाजिक त्याग के बराबर है अर्थात् $TQ_2 = HQ_1$।

नोट

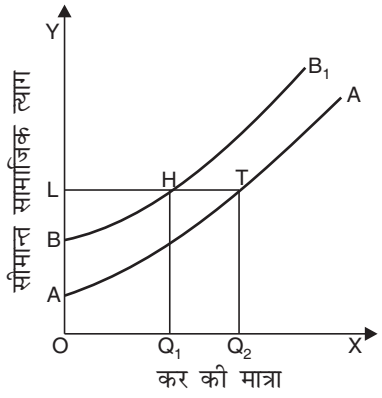

चित्र-4

टास्क कराधान के भार के वितरण को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट करें।

मसग्रेव का स्पष्टीकरण

प्रो. मसग्रेव ने भी अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धांत को चित्र-5 की सहायता से समझाने का प्रयास किया है।

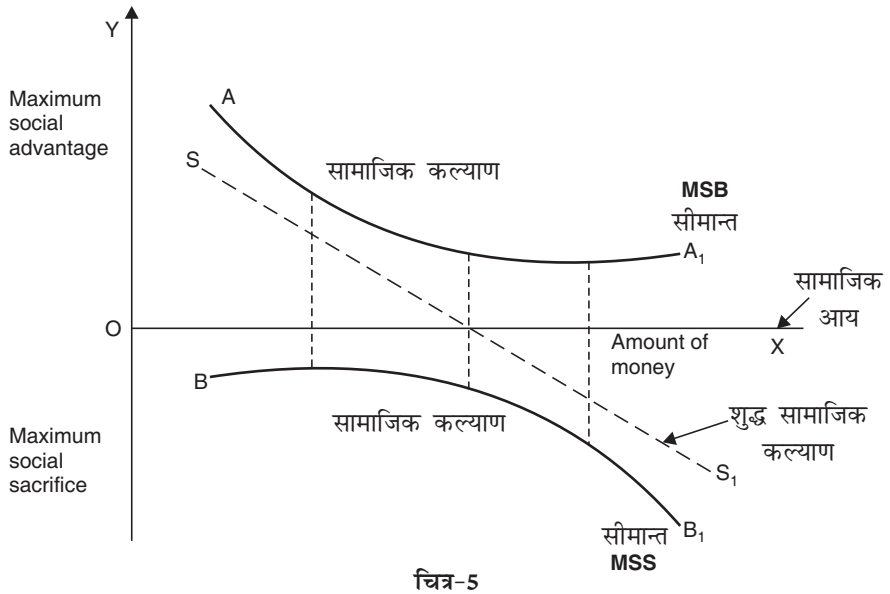

चित्र-5

चित्र-5 में OX पर सार्वजनिक आय प्रदर्शित की गई है। OX के ऊपर का भाग सामाजिक कल्याण तथा नीचे का हिस्सा सामाजिक त्याग को दिखाता है। AA_1 सीमांत सामाजिक कल्याण तथा BB_1 सीमांत सामाजिक त्याग को प्रदर्शित करता है। AA_1 का नीचे झुकना इस बात को व्यक्त करता है कि व्यय की अतिरिक्त राशियों से प्राप्त होने वाला कल्याण गिर रहा है। BB_1 वक्र से यह स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे कर का भार बढ़ेगा करदाता के त्याग की मात्रा भी बढ़ती जायेगी। SS_1 वक्र शुद्ध सामाजिक कल्याण को दर्शाता है जिसे AA_1 में से BB_1 घटाकर मालूम किया जा सकता है अर्थात् सामाजिक लाभ में से सामाजिक त्याग घटा दिया जाता है। M वह बिन्दु है जहाँ पर वास्तविक सामाजिक कल्याण अधिकतम है और OM धन की वह मात्रा है जो सरकार को समाज से कर के रूप में प्राप्त करनी चाहिए और सार्वजनिक व्यय के रूप में खर्च करनी चाहिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. लोक वित्त के सिद्धांत को ..... का सिद्धांत भी कहते हैं।
2. एडम स्मिथ ..... था।
3. जब सरकार धन व्यय करती है तो ..... में कुछ वृद्धि होती है।
4. प्रत्येक व्यय से ..... उपयोगिता समान रहनी चाहिए।
5. व्यय ऐसा हो कि ..... बढ़े।

2.2 अधिकतम सामाजिक लाभ (Maximum Social Interest)

निष्कर्ष के रूप में अब कहा जा सकता है कि ऐसे तीन मूलभूत सिद्धान्त हैं जो कि वित्तीय कार्यवाहियों में सरकार का मार्गदर्शन करते हैं तथा अधिकतम सामाजिक लाभ के आदर्श को प्राप्त करने में सरकार की सहायता करते हैं–

1. **व्यय की सीमा**–सरकारी व्यय उस सीमा तक ही किया किया जाना चाहिए, जहाँ कि राज्य द्वारा खर्च किये धन की अन्तिम इकाई से जनता को प्राप्त होने वाला लाभ सरकारी आय की उसी इकाई के प्राप्त करने में जनता पर पड़ने वाले त्याग के ठीक बराबर हो।

2. **राज्यों के साधनों का विभाजन**–खर्च की विभिन्न मदों के बीच राज्य के साधनों का बँटवारा इस प्रकार किया जाना चाहिए कि प्रत्येक साधन से प्राप्त होने वाली सन्तुष्टि का सीमान्त प्रतिफल एक समान हो।

3. **कर विभाजन**–करों का बँटवारा भी इस प्रकार किया जाना चाहिए कि लोगों द्वारा धन का जो सीमान्त तुष्टिगुण करों के रूप में अदा किया जाये, वह सभी करदाताओं का एक समान हो।

सामाजिक लाभ की कसौटी (Test of Social Interest)

प्रो. डाल्टन ने सामाजिक लाभ के परीक्षण की कुछ कसौटियों का भी सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि लोक वित्त की कार्यवाहियों के द्वारा कुछ लक्ष्य प्राप्त किये जाने चाहिए। जिनके द्वारा सम्पूर्ण रूप में, समुदाय के सामाजिक लाभ में वृद्धि हो। उनके द्वारा सुझाई जाँच-कसौटियाँ निम्न प्रकार हैं–

(1) **समाज का संरक्षण** (Preservation of Community)–प्रत्येक सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह आन्तरिक अशान्ति तथा अव्यवस्था तथा बाह्य आक्रमण से समाज की रक्षा करे। आन्तरिक शान्ति तथा बाह्य सुरक्षा से नागरिकों में आत्मविश्वास पैदा होता है और उनका आर्थिक जीवन उन्नत होता है जिससे सामाजिक लाभ में वृद्धि होती है। अत: यह अत्यन्त आवश्यक है कि सेना, पुलिस तथा न्यायालयों आदि की स्थापना की जाए ताकि देश के आन्तरिक व बाह्य शत्रुओं की धमकियों का सफलतापूर्वक मुकाबला किया जा सके। प्रत्येक स्थिति में यह राज्य का परम कर्त्तव्य है कि वह अपने नागरिकों के आर्थिक तथा अनार्थिक, दोनों ही प्रकार के कल्याण में वृद्धि करे। वह देश तथा विदेश के लिए शान्ति तथा सहअस्तित्व (peace and co-existence) की नीति का अनुसरण करे, अन्यथा सेना, पुलिस, न्यायालयों आदि पर होने वाले अनुत्पादक व्यय में अधिक वृद्धि हो जायेगी, जिसका देश के आर्थिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

(2) **उत्पादन में सुधार** (Improvement in Production)–लोक वित्त की कार्यवाहियों का दूसरा लक्ष्य यह होना चाहिए कि देश में उत्पादन का स्तर ऊँचा उठे ताकि समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो सके। उत्पादन में वृद्धि या सुधार का अर्थ है–"(क) उत्पादन शक्ति में वृद्धि, ताकि प्रति श्रमिक द्वारा कम प्रयत्न करके अधिक उत्पादन किया जा सके, (ख) उत्पादन के संगठन में सुधार, ताकि बेरोजगारी तथा अन्य कारणों से होने वाली आर्थिक साधनों की बरबादी को न्यूनतम किया जा सके, और (ग) उत्पादन की रचना तथा उसके स्वरूप में सुधार, ताकि ऐसी वस्तुओं का उत्पादन हो जिनसे समाज की आवश्यकताएँ सर्वोत्तम रूप में पूरी की जा सकें।" अत: लोक वित्त की कार्यवाहियों (सरकारी व्यय, कराधान तथा सरकारी ऋण आदि) का उद्देश्य यह होना चाहिए कि इन तीनों लक्ष्यों को पूरा किया जाए जिससे कि उत्पादन में और समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो।

नोट

(3) **वितरण में सुधार** (Improvement in Distribution)–राज्य की नीति का निर्धारण करते समय तीसरी विचारणीय बात यह होनी चाहिए कि यह देखा जाए कि जो उत्पादन किया गया है, समाज के विभिन्न वर्गों के बीच उसका समुचित रूप से वितरण भी हो, अर्थात् उसका वितरण इस प्रकार होना चाहिए कि विभिन्न व्यक्तियों तथा परिवारों की आय में पाई जाने वाली असमानताएँ तथा घट-बढ़ समाप्त हो। आय का वितरण परिवार की आवश्यकताओं के अनुसार तथा साथ ही साथ उनकी कुशलता तथा प्रयत्नों (efforts) के अनुरूप होना चाहिए। अनुपार्जित आय (unearned income) के कारण आय में उत्पन्न होने वाली असमानाताओं को सहन नहीं किया जाना चाहिए जबकि कुशलता तथा परिश्रम को न्यायोचित सम्मान दिया जाना चाहिए और पुरस्कृत किया जाना चाहिए। **डाल्टन** के शब्दों में, "वितरण में सुधार का अर्थ है–(क) विभिन्न व्यक्तियों एवं परिवारों की आय में पाई जाने वाली असमानताओं को, जो अधिकांश सभ्य समाजों में पाई जाती है, कम करना, (ख) कुछ व्यक्तियों एवं परिवारों, विशेष रूप से समाज के निर्धन वर्ग के लोगों की आमदनियों में, विभिन्न समयों में होने वाली भारी घट-बढ़ को समाप्त करना।" अत: यह अत्यन्त आवश्यक है कि आर्थिक कल्याण में वृद्धि के लिए आय तथा धन का समुचित रूप से वितरण किया जाए।"

(4) **आर्थिक स्थिरता और पूर्ण रोजगार** (Economic Stability and Full Employment)–आर्थिक अस्थिरता (अर्थात् बार-बार तेजी तथा मन्दी की स्थिति उत्पन्न होना) स्वतंत्र अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख लक्षण है। इससे अनेक बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं, जैसे कि बेरोजगारी तथा अत्युत्पादन (over production) लोगों के सामाजिक कल्याण में तभी वृद्धि की जा सकती है जबकि देश में व्यावसायिक दशाओं में स्थिरता बनी रहे तथा उसमें आने वाले उतार-चढ़ाव (fluctuations) समाप्त कर दिये जाएँ। अत: राजकोषीय कार्यवाहियों का लक्ष्य यह होना चाहिए कि रोजगार के ऊँचे स्तर पर आर्थिक स्थिरता को बनाए रखा जा सके। राजकोषीय कार्यवाहियों के द्वारा सार्वजनिक निर्माण आदि के कार्यों पर सरकारी खर्च में वृद्धि करके मन्दी (depression) के प्रभावों को कम किया जा सकता है और इस प्रकार रोजगार तथा समर्थ माँग (effective demand) में वृद्धि की जा सकती है। इसी तरह, मुद्रा स्फीति की अवधि में, सरकारी उधार तथा भारी कराधान के द्वारा मूल्य स्तर को नीचे लाने में मदद मिल सकती है।

(5) **भविष्य के लिए व्यवस्था** (Provision for Future)–व्यक्ति साधारणतया भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को ही अधिक महत्त्व देते हैं। परिणामस्वरूप, उनकी वित्तीय गतिविधियाँ उनकी वर्तमान आवश्यकताओं अथवा जीवनकालीन आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के प्रयासों से ही प्रेरित रहती हैं। किन्तु राज्य पर दोहरी जिम्मेदारी होती है क्योंकि उसे वर्तमान तथा भावी दोनों पीढ़ियों (generations) के हितों की देखभाल करनी होती है। अत: राज्य के लिए यह उचित ही है कि वह वर्तमान पीढ़ी के छोटे लाभ के मुकाबले भावी पीढ़ी के बड़े लाभों को प्रमुखता दे। **डाल्टन** के शब्दों में, **"राज्य भविष्य का भी उसी प्रकार संरक्षक है जिस प्रकार वर्तमान का। व्यक्ति तो मर जाता है किन्तु वह समाज, व्यक्ति जिसका अंग है, जीवित रहता है। अत: राज्य को वर्तमान के छोटे सामाजिक लाभ के मुकाबले भविष्य के बड़े सामाजिक लाभ को ही प्रमुखता देनी चाहिए।"**

सीमाएँ (Limitations)

अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त लोक वित्त का एक मूलभूत सिद्धान्त है और इसे राज्य की वित्तीय क्रियाओं का एक मार्गदर्शक सिद्धांत माना जाता है। परन्तु इसके बावजूद, जब इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप से लागू किया जाता है तो कई कठिनाइयाँ सामने आती हैं। उनमें निम्न मुख्य हैं–

(*i*) **तुष्टिहीनता तथा तुष्टि के बीच असन्तुलन** (Disadjustment between disutility and utility)– राज्य के लिए यह बड़ा कठिन होगा कि वह कर लगाने से उत्पन्न होने वाली तुष्टिहीनता या अनुपयोगिता (disutility) तथा सरकारी व्यय से लोगों को मिलने वाले तुष्टिगुण या उपयोगिता (utility) के बीच सन्तुलन स्थापित कर सके। यहाँ तक कि व्यक्ति तक को भी अपने व्यावहारिक जीवन में ऐसा करने में तथा उस बिन्दु तक पहुँचने में प्राय: कठिनाई होती है जहाँ कि उसके त्याग की तुष्टिहीनता उसकी आय के तुष्टिगुण के बराबर हो और राज्य के लिए तो ऐसा करने में और भी कठिनाई होती है, क्योंकि सरकार का कर लगाने तथा खर्च करने का कार्य किसी एक व्यक्ति द्वारा सम्पन्न नहीं किया जाता, बल्कि विभिन्न विभागों में तथा विभिन्न स्थानों पर लाखों सरकारी कर्मचारियों द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

नोट

(*ii*) **भविष्य का अनुमान** (Future expectation)–राज्य भविष्य के बारे में अनुमान लगा सकता है और देख सकता है कि भविष्य में क्या-क्या घटनाएँ घटित हो सकती है, परन्तु इन अनुमानों एवं परिकल्पनाओं के आधार पर यह मान लेना बड़ा कठिन है कि सरकार द्वारा किया गया खर्च वर्तमान में जो तुष्टिहीनता उत्पन्न कर रहा है, भविष्य में उसके मुकाबले अधिक तुष्टिगुण प्रदान करेगा। अत: कराधान की सीमान्त तुष्टिहीनता को सरकारी खर्च के सीमान्त तुष्टिगुण से सन्तुलित कर सकना राज्य के लिए यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। शुद्ध सामाजिक लाभ को अधिकतम करने में राज्य की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि अपनी वित्तीय क्रियाओं के इन परिणामों का सही-सही अनुमान लगाने की उसमें कितनी योग्यता है और ऐसा करने की योग्यता अभी आ सकती है जबकि इस कार्य को करने वाले अधिकारी तथा कर्मचारी बड़े संवेदनशील (sensitive) तथा बुद्धिमान हों। अत: यह अत्यन्त आवश्यक है कि सरकारी प्रशासन की रचना प्रत्येक स्तर पर ऐसे योजना-निर्माताओं, विशेषज्ञों तथा उच्च योग्यता वाले अधिकारियों को मिलाकर की जानी चाहिए जो कि एक निश्चित समय में खर्च किये गये सरकारी धन से अधिकतम लाभ प्राप्त करने में समर्थ हो सकें।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

6. ऐसे कितने मूलभूत सिद्धांत हैं जो कि वित्तीय कार्यवाहियों में सरकार का मार्गदर्शन करते हैं?
   (अ) तीन (ब) चार
   (स) पाँच (द) छ:।
7. आर्थिक अस्थिरता किस अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख लक्षण है?
   (अ) परतंत्र (ब) स्वतंत्र
   (स) परतंत्र और स्वतंत्र (द) इनमें से कोई नहीं।
8. उत्पादन में वृद्धि का अर्थ है–
   (अ) उत्पादन शक्ति में ह्रास (ब) उत्पादन शक्ति का समान होना
   (स) उत्पादन शक्ति में वृद्धि (द) इनमें से कोई नहीं।

2.3 सारांश (Summary)

- "लोक वित्त का सिद्धान्त" नामक वाक्यांश से आशय उस मूलभूत नियम (fundamental rule) से है, जिसके द्वारा राज्य की वित्तीय नीति का निर्धारण किया जाना चाहिए।
- एडम स्मिथ जैसे प्राचीन अर्थशास्त्रियों का मत था कि राज्य की क्रियाएँ तथा कराधान की मात्रा कम से कम होनी चाहिए।
- वित्त की सब योजनाओं में सर्वोत्तम योजना है कम व्यय करना और सभी करों में सर्वोत्तम कर वह है जिसकी धनराशि सबसे कम हो।
- अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त के अनुसार, राज्य की अपनी आय की प्राप्ति और धन का व्यय इस प्रकार करना चाहिए ताकि जनता के कल्याण में अधिकतम वृद्धि हो सके।
- सरकारी व्यय प्रत्येक दिशा में ठीक उस सीमा तक किये जाने चाहिए कि जिससे किसी भी क्षेत्र में इस व्यय की थोड़ी-सी और वृद्धि से समाज को प्राप्त होने वाले लाभ में, और इसके विपरीत कराधान अथवा अन्य सरकारी आय के अन्य किसी साधन में की जाने वाली थोड़ी-सी भी वृद्धि से होने वाली हानि में, समान सन्तुलन स्थापित किया जा सके। यह नियम सरकारी व्यय तथा सरकारी आय दोनों की ही एक आदर्श सीमा प्रस्तुत करता है।

नोट

- विभिन्न उपयोगों (uses) के बीच साधनों का बंटवारा इस प्रकार किया जाना चाहिए कि संतुष्टि का सीमांत प्रतिफल (marginal return of satisfaction) सभी उपयोगों में एक समान हो।
- यदि न्यूनतम कुल त्याग की स्थिति लानी है तो करों को इस प्रकार बाँटा जाना चाहिए कि करों के रूप में अदा किये धन का सीमांत तुष्टिगुण सभी करदाताओं के लिए समान हो।
- वितरण में सुधार का अर्थ है–(क) विभिन्न व्यक्तियों एवं परिवारों की आय में पाई जाने वाली असमानताओं को, जो अधिकांश सभ्य समाजों में पाई जाती है, कम करना, (ख) कुछ व्यक्तियों एवं परिवारों, विशेष रूप से समाज के निर्धन वर्ग के लोगों की आमदनियों में, विभिन्न समयों में होने वाली भारी घट-बढ़ को समाप्त करना।

2.4 शब्दकोश (Keywords)

- राजस्व (Revenue)–राज्य की आय।
- प्रतिरक्षा (Defence)–हिफ़ाजत।

2.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त की व्याख्या करें।
2. साधनों का बँटवारा किस प्रकार किया जाता है?
3. कर लगाते समय किन-किन तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए?
4. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें–

   (*a*) व्यय की सीमा (*b*) कर विभाजन।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. अधिकतम सामाजिक लाभ 2. अर्थशास्त्री 3. उपयोगिता 4. सीमांत
5. उत्पादन 6. (अ) 7. (ब) 8. (स)।

नोट

Unit 3: लोक आगम (Public Revenue)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
3.1 अर्थ तथा महत्त्व (Meaning and Significance)
3.2 लोक आगम के स्त्रोत (Sources of Public Revenue)
3.3 राजस्व/आगम प्राप्तियाँ (Revenue Receipts)
3.4 आगम के गैर-कर स्त्रोत (Non-tax Sources of Revenue)
3.5 सारांश (Summary)
3.6 शब्दकोश (Keywords)
3.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- लोक आगम के अर्थ तथा महत्त्व को समझने में।
- लोक आगम के स्त्रोत को जानने में।
- कर के विभिन्न तत्व को समझने हेतु।
- उपहार तथा अनुदान की जानकारी प्राप्त करने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

आज के आर्थिक नियोजन के युग में उत्पत्ति का जो महत्त्व अर्थशास्त्र में है, वही महत्त्व लोक आगम का लोक वित्त में है। वर्तमान समय में राज्यों के कार्यों में वृद्धि होने के कारण सार्वजनिक व्यय की राशि भी बढ़ती जा रही है। लोक आगम के स्त्रोत में कर वे अनिवार्य भुगतान हैं जो करदाता द्वारा सरकार के प्रति बिना किसी ऐसी आशा से किये जाते हैं कि उसे उनके बदले में कोई प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होगा।

3.1 अर्थ तथा महत्त्व (Meaning and Significance)

जिस प्रकार एक व्यक्ति को अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु आय की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सरकार को अपने कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए आय की आवश्यकता होती है। सरकार को प्राप्त होने वाली

नोट

सभी प्रकार की आय को सार्वजनिक आय कहा जाता है। लोक वित्त के अध्ययन में सरकारी आय को वही स्थान प्राप्त होता है जो कि अर्थशास्त्र के अध्ययन में उत्पादन (production) के प्राप्त होता है। जिस प्रकार उपभोग (consumption) की पूर्ति के लिए उत्पादन आवश्यक होता है, उसी प्रकार सरकारी खर्च की पूर्ति के लिए सरकारी आय आवश्यक होती है।

सरकार को विभिन्न स्त्रोतों से जो आय प्राप्त होती है उसे सरकारी आय या सरकारी राजस्व कहा जाता है। किन्तु डाल्टन ने सरकारी आय का व्यापक तथा संकुचित, दोनों ही अर्थों में प्रयोग किया है। उसने **व्यापक अर्थ** में इसे सरकारी प्राप्तियों (public receipts) का नाम दिया है और **संकुचित अर्थ** में सरकारी आय या सरकारी राजस्व (public revenue) की संज्ञा दी है। सरकारी राजस्व में करों (taxes) सरकारी उद्यमों द्वारा प्रदान की जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं की कीमतों, फीस तथा जुर्माने जैसी प्रशासनिक क्रियाओं की आय तथा उपहारों व अनुदानों को सम्मिलित किया जाता है। किन्तु सरकारी प्राप्तियों में सरकार की उन सभी आमदनियों को सम्मिलित किया जाता है जो कि किसी भी निश्चित अवधि में उसे प्राप्त होती हैं। अन्य शब्दों में, सरकारी प्राप्तियाँ (public receipts) = सरकारी राजस्व (public revenue) + अन्य सभी स्त्रोतों की आय जैसे कि व्यक्तियों, बैंकों या केन्द्रीय बैंक से लिया जाने वाला उधार तथा नई पत्र-मुद्रा जारी करना।

आज के आर्थिक नियोजन के युग में उत्पत्ति का जो महत्त्व अर्थशास्त्र में है, वही महत्त्व लोक आगम का लोक वित्त में है। वर्तमान समय में राज्यों के कार्यों में वृद्धि होने के कारण सार्वजनिक व्यय की राशि भी बढ़ती जा रही है। इस बढ़ते हुए व्यय की पूर्ति हेतु सार्वजनिक आय में वृद्धि करना आवश्यक हो गया है। आधुनिक युग में आय सम्बन्धी साधनों का उद्देश्य केवल आय प्राप्त करना ही नहीं है, अपितु एक प्रभावकारी राजकोषीय यन्त्र के रूप में उत्पादन, रोजगार, विनियोग एवं अन्य आर्थिक क्रियाओं को भी प्रभावित करना है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक व्यय एवं सार्वजनिक ऋण नीति के साथ-साथ सार्वजनिक आय के सम्बन्ध में भी निश्चित नीति का निर्धारण करके वाँछित उद्देश्यों की पूर्ति करते हेतु एक शक्तिशाली साधन की व्यवस्था की जा सकती है। इसलिए वर्तमान युग में सार्वजनिक आय प्रत्येक अर्थव्यवस्था के लिए, चाहे विकसित हो या अविकसित, महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है। सरकार की लोकप्रियता एवं सफलता सम्पूर्ण सार्वजनिक आय पर निर्भर करती है। इस प्रकार निजी व्यक्तियों तथा सरकार, दोनों के लिए सार्वजनिक आय के तरीकों तथा उसकी प्रकृति के अध्ययन का व्यावहारिक महत्त्व अधिक हो गया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. सरकार को प्राप्त होने वाली सभी प्रकार की आय को ..... आप कहते हैं।
2. लोक वित्त में सरकारी आय को वही स्थान प्राप्त होता है जो कि अर्थशास्त्र के अध्ययन में ..... के प्राप्त होता है।
3. ..... की पूर्ति के लिए उत्पादन आवश्यक होता है।
4. सरकारी प्राप्तियाँ = सरकारी राजस्व + ...।
5. आज के आर्थिक नियोजन के युग में उत्पत्ति का जो महत्त्व अर्थशास्त्र में है, वही महत्त्व ..... का लोक वित्त में है।

3.2 लोक आगम के स्त्रोत (Sources of Public Revenue)

अब हम सरकारी आय के विभिन्न स्त्रोतों या रूपों का अध्ययन करेंगे। ये स्त्रोत निम्नलिखित हैं–

(1) कर (Taxes),

(2) व्यावसायिक आय (Commercial Revenues),

(3) प्रशासनिक आय (Administrative Revenues),

(4) उपहार तथा अनुदान (Gifts and Grants),

अब हम इन सभी स्त्रोतों का पृथक्-पृथक् अध्ययन करेंगे।

नोट

3.2.1 कर (Taxes)

कर वे अनिवार्य भुगतान (compulsory payments) हैं जो करदाता द्वारा सरकार के प्रति बिना किसी ऐसी आशा से किये जाते हैं कि उसे उनके बदले में कोई प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होगा। बेस्टेबिल के अनुसार, "कर व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के पास विद्यमान धन का वह अनिवार्य अंशदान (compulsory contribution) है जो कि सरकारी कार्यों को सेवा के बदले में दिया जाता है।" प्रो. सैलिग्मैन (Seligmen) का कहना है कि, "कर व्यक्ति द्वारा सरकार को दिये जाने वाले उस अनिवार्य अंशदान को कहते हैं जो सबके सामान्य हित के लिए किये जाने वाले खर्चों के भुगतान में अदा किया जाता है और उसके बदले में कोई विशेष लाभ नहीं दिया जाता।" टॉजिग (taussig) के अनुसार, "सरकार द्वारा ली जाने वाली अन्य धनराशियों के मुकाबले कर के सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि इसमें करदाता व सरकारी सत्ता के बीच प्रत्यक्ष रूप से लेने और देने वाली बात (quid pro quo) नहीं पाई जाती है।"

कर की विशेषताएँ या लक्षण (Characteristics of a Tax)

उपर्युक्त वर्णित परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कर में कुछ विशेषतायें पाई जाती हैं, जो इस प्रकार हैं–

(1) अनिवार्य भुगतान (Compulsory Contribution)–कर नागरिक द्वारा अथवा निवास तथा सम्पत्ति आदि के कारण से देश की सीमा में रहने वाली प्रजा द्वारा राज्य को दिया जाने वाला अंशदान है और यह अंशदान सामान्य उपयोग (Common use) के लिए ही दिया जाता है। चूँकि यह एक अनिवार्य अंशदान है, अत: कोई भी व्यक्ति कर की अदायगी से इन्कार नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए, कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि चूँकि उसे राज्य द्वारा प्रदान की जाने वाली कुछ सेवाओं का लाभ नहीं मिल रहा है अथवा चूँकि उसे वोट देने का अधिकार प्राप्त नहीं है, अत: वह कर देने को बाध्य नहीं है। अत: कर उस प्रत्येक व्यक्ति को अदा करना पड़ता है जिस पर कि राज्य द्वारा कर लगाया जाता है भले ही वह वयस्क (Adult) हो या अवयस्क (minor) और नागरिक हो या विदेशी। यही नहीं, यदि कोई व्यक्ति कर देने से इन्कार करे तो उसे दण्ड दिया जाता है।

परन्तु इसके बावजूद कर की कुछ सीमायें हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी विशेष पदार्थ पर कर लगाया जाता है तो उसे पदार्थ का उपयोग न करके वह कर से बच सकता है। मान लीजिये कि शराब पर कर लगाया गया है तो सरकार इस कर को अदा करने के लिए किसी व्यक्ति को केवल तभी बाध्य कर सकती है। जबकि वह शराब का उपयोग करे। परन्तु यदि वह शराब नहीं पीता है, तो उसे शराब पर लगे कर को अदा करने के लिए भी बाध्य नहीं किया किया जा सकता। इन सीमाओं के अतिरिक्त, कर एक अनिवार्य भुगतान ही है और इसकी यही विशेषता इसको अन्य किस्म की सरकारी आय से पृथक् करती है।

(2) व्यक्तिगत दायित्व (Personal Obligation)–कर करदाता पर व्यक्तिगत दायित्व (Personal Obligation) डालता है। इसका अर्थ यह है कि यदि किसी व्यक्ति पर कर लगा है तो उसका कर्तव्य या दायित्व है कि उसे अदा करे और किसी भी स्थिति में उससे बचने की न सोचे। उदाहरण के लिए, मान लीजिये लोगों की आमदनियों पर कर लगाया गया है, तो चूँकि लोगों की आय के अनेक स्त्रोत हो सकते हैं, अत: सम्भव हैं, सरकार को लोगों की आय के सभी स्त्रोतों का पता न हो। इस स्थिति में, यह करदाता का कर्त्तव्य है कि वह अपनी समस्त आय को घोषित करे और कर अदा करते समय अपनी कुल आय को ही दृष्टिगत रखे।

(3) कर समाज के हित के लिए लगाया जाता है (The Tax is imposed for the General and Common Benefit)–करदाताओं से करों के रूप में जो अंशदान प्राप्त होता है, वह हो सकता है कि केवल उनके ही लाभ के लिए खर्च न किया जाये। बल्कि सर्व-सामान्य के हित में खर्च किया जाये। हो सकता है कि कोई व्यक्ति अपनी सभी आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ न हो विशेष रूप से ऐसी आवश्यकताओं को पूरा करने में जिस पर कि भारी मात्रा में खर्च होता है, जैसे कि अस्पताल का निर्माण। इस स्थिति में राज्य सभी लोगों के लाभ के लिए ऐसी सेवाओं की व्यवस्था करता है। अत: इस सामान्य बोझ को उठाने के लिए ऐसे सभी लोगों पर कर लगा दिये जाते हैं जो कि उन्हें अदा करने में समर्थ होते हैं।

नोट

(4) कर और राज्य द्वारा प्रदान की गई सेवाओं में कोई सम्बन्ध नहीं (No relation between Taxation and State Services)–कर की अदायगी, राज्य द्वारा व्यक्ति के लिए की जाने वाली किसी विशेष सेवा के भुगतान के लिए नहीं की जाती और न कर इसलिए अदा किया जाता है कि करदाता को राज्य द्वारा कोई विशिष्ट लाभ प्रदान किया गया है। इस प्रकार, कर इसलिए नहीं दिये जाते क्योंकि कर देने वाले व्यक्ति को राज्य से कोई लाभ प्राप्त हुआ है अथवा राज्य ने उसके लिए कोई सेवा की है।

परन्तु कर की इस विशेषता की भी कुछ सीमायें हैं। उदाहरण के लिए भूमि कर (Land tax) केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा अदा किया जाता है जिनके पास भूमि होती है अथवा जो भूमि से लाभ उठाते हैं। इसी प्रकार, मनोरंजन कर (Entertainment tax) केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा दिया जाता है जो मनोरंजन का लाभ प्राप्त करते हैं। इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए प्रो. डि मार्को (De Marco) ने कर की इस विशेषता की सीमाओं के सम्बन्ध में कहा कि आधुनिक राज्य में कराधान का कानून परस्पर विनिमय के सम्बन्ध (exchange relationship) की मान्यता पर आधारित है, अर्थात् राज्य द्वारा सेवा की व्यवस्था की जाती है और उसके बदले में सरकार को कर अदा किया जाता है।[1] अत: डि मार्को के अनुसार, "कर प्रत्येक नागरिक द्वारा सरकार को दी जाने वाली वह कीमत है जो कि वह उन सामान्य सार्वजनिक सेवाओं की लागत के अपने उस हिस्से के बदले में अदा करता है जिसे वह उपयोग करता है।"[2]

परन्तु यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि किसानों से भूमि कर के रूप में जो अंशदान प्राप्त किया जाता है, हो सकता है कि राज्य द्वारा उसका उपयोग केवल उन्हीं के लाभ के लिए न किया जाए, बल्कि सम्पूर्ण समाज के ही लाभ के लिए दिया जाए। इसी प्रकार, मनोरंजन का लाभ प्राप्त करने के बदले में लोगों से सरकार को जो अंशदान प्राप्त होता है, हो सकता है कि सरकार द्वारा वह केवल उन्हीं के लाभ के लिए प्रयोग में न लाकर सम्पूर्ण समुदाय के लाभ के ही प्रयोग में लाया जाए। इस प्रकार, व्यक्ति द्वारा कर के रूप में अदा की जाने वाली धनराशि तथा सरकारी सेवा से उसे प्राप्त होने वाले लाभ के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है। अत: कर एक अनिवार्य अंशदान है और यह अंशदान सर्व-सामान्य को प्रदान किये जाने वाले लाभ के लिए ही होती है तथा सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवा तथा अदा किये जाने वाले कर के बीच परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता।

क्या आप जानते हैं करदाता का कर्त्तव्य है कि वह अपनी समस्त आय को घोषित करे तथा कर अदा करते समय अपनी कुल आय को दृष्टिगत रखे।

कर के तत्व (Elements of Tax)

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कर के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं–

1. अनिवार्य अंशदान (Compulsory Contribution)–कर एक अनिवार्य अंशदान है, यदि कर लगने की कानून द्वारा निर्धारित दशाएँ लागू होती हों।

2. केवल सरकार द्वारा कर लगाना (Taxes are imposed by a government)–केवल सरकार द्वारा ही लगाये जाते हैं। यदि किसी मन्दिर या अन्य संस्था के प्रबन्धक किसी क्षेत्र के प्रत्येक परिवार के लिए हर वर्ष एक विशिष्ट रकम देना अनिवार्य कर दें, तो इसे किसी भी स्थिति में कर नहीं कहा जा सकता।

3. त्याग का समावेश (Involvement of Sacrifice)–कर के भुगतान में त्याग की भावना निहित होती है क्योंकि करदाता समाज के सामान्य हित में ही कर अदा करता है।

---

1. "The law of taxation in modern state is based on the assumption of an exchange relationship, that is the exchange of a payment of the state for the provision of public services by the state."
2. "The tax is the price which citizen pays to the state to cover his share of the cost the general public services which he will consume."
   —4 and 5 Antonio de Viti de Macro, First Principle of Public Finance, pages 112-113.

नोट

4. समाज कल्याण (Social Welfare)–कर सम्पूर्ण समुदाय के कल्याण के उद्देश्य से लगाया जाता है, अर्थात् कर से प्राप्त होने वाली आय, एक ओर तो, समाज के विशेष वर्ग के लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिए खर्च कर दी जाती है और, दूसरी ओर इस खर्च से आय की असमानताएँ दूर होती हैं।

5. भुगतान के लिए लाभ शर्त नहीं (The Benefit is not the condition for the Payment)–लाभ प्राप्त होना कर की अदायगी की कोई अनिवार्य शर्त नहीं है। कर इसलिए नहीं अदा किये जाते क्योंकि करदाता सरकारी खर्च से कोई लाभ प्राप्त करते हैं, अपितु इसलिए अदा किये जाते हैं क्योंकि वे अनिवार्य होते हैं। साथ ही, करदाता को यदि कोई लाभ मिलता भी है तो यह जरूरी नहीं है कि वह अदा किये गये कर के अनुपात में ही हो।

6. सेवा लागत से कोई सम्बन्ध नहीं (No Relation with the Cost of Service)–सरकारी सेवा द्वारा व्यक्तियों को जो लाभ प्रदान किया जाता है, कर उस लाभ की लागत (cost) को वसूल करने के लिए नहीं लगाया जाता, अर्थात् कर का उन सेवा की लागत से कोई सम्बन्ध नहीं होता जो कि सरकार व्यक्ति को प्रदान करती है। उदाहरण के लिए, यह हो सकता है कि एक गरीब व्यक्ति सरकारी खर्च से लाभान्वित तो सबसे अधिक हो किन्तु कराधान का प्रतिकूल प्रभाव उस पर सबसे कम पड़े।

7. आय में से भुगतान (The Payment from Income)–कर आय पर भी लगाये जा सकते हैं और पूँजी पर भी। परन्तु उनका भुगतान आय में से ही किया जाता है।

8. व्यक्तिगत कर अदायगी (Individual Payment)–कर व्यक्ति, सम्पत्ति या वस्तु किसी पर भी लगाये जा सकते हैं, परन्तु उनकी अदायगी व्यक्तियों द्वारा ही की जाती है।

9. कानूनी वसूली (Legal Collection)–कर एक कानूनी वसूलयाबी (legal collection) है।

3.2.2 व्यावसायिक आय (Commercial Revenues)

व्यावसायिक आय वे आमदनियाँ हैं जो कि सरकार को अपने द्वारा उत्पादित वस्तुओं अथवा सेवाओं की कीमतों के रूप में प्राप्त होती हैं। अन्य शब्दों में, उस आय को व्यावसायिक आय कहा जाता है जो कि सरकार द्वारा सरकारी उद्यमों (public enterprises) की वस्तुओं व सेवाओं को बेचकर प्राप्त की जाती है। इस आय को कीमतों (Prices) का नाम दिया जाता है और वह इसलिए क्योंकि वह सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं की कीमतों के रूप में प्राप्त होती हैं। व्यावसायिक आय में डाक व्यय की अदायगियाँ, चुँगी, सरकारी साख निगमों द्वारा उधार दिये गये धन का ब्याज, सरकारी भण्डारों की शराब के लिए अदा की जाने वाली कीमतें, सरकार द्वारा वितरित की जाने वाली बिजली की कीमतें, रेल-सेवा आदि की अदायगियाँ सम्मिलित की जाती हैं। कभी-कभी सरकार इस्पात तथा खनिज तेल जैसी वस्तुओं के उत्पादन से भी आय प्राप्त करती है। किन्तु इसके बावजूद, संसार के अधिकांश देशों में व्यावसायिक उद्यमों से होने वाली बचतों या बेशियों (Surpluses) को आय का कोई महत्त्वपूर्ण स्त्रोत नहीं माना जाता।

कर तथा कीमत में अन्तर (Difference between Tax and Price)

कर तथा कीमत में मुख्य अन्तर निम्न प्रकार हैं-

(1) **अदायगी का अन्तर**–कर तो एक अनिवार्य अंशदान है जो ऐसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अदा किया जाता है जिस पर कि वह लगाया जाता है किन्तु कीमत उन व्यक्तियों द्वारा अदा की जाती है, जो सरकार द्वारा उत्पादित वस्तुएँ, तथा सेवाएँ खरीदते हैं।

(2) **लाभ का अन्तर**–कर इस बात की कोई गारन्टी नहीं देता कि उस भुगतान के बदले में कोई लाभ (benefit) भी प्राप्त होगा कि नहीं, और यदि होगा तो उसकी मात्रा (amount) तथा प्रकृति (nature) क्या होगी, किन्तु कीमतें वस्तुओं तथा सेवाओं के बदले में की जाने वाली प्रत्यक्ष अदायगियाँ हैं और उन अदायगियों (Payments) की मात्रा खरीदी गई वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा पर निर्भर होती है। प्रो. पी. ई. टेलर ने इस बात को इन शब्दों में व्यक्त किया है कि "व्यावसायिक आय को अन्य श्रेणियों

नोट

की आय से पृथक् करने वाली इसकी विशेषताएँ हैं : अदायगी या भुगतान के बदले में वस्तु या सेवा की प्रत्यक्ष प्राप्ति (direct receipt) तथा दूसरे, भुगतान की धनराशि का मोटे तौर पर वस्तु या सेवा की लागत (या लाभ) के साथ समायोजन (adjustment)।"

यहाँ उल्लेखनीय है कि सरकार द्वारा उत्पादित वस्तुओं की कीमत और औसत या सीमान्त उत्पादन लागत के बीच सदा ही कोई साम्य या समानता की स्थिति बनी रहती हो, ऐसी बात नहीं है। यह हो सकता है कि सरकारी उद्यमों द्वारा अपनाई जाने वाली सामान्य सामाजिक नीति (general social policy) और व्यावसायिक नीति (business policy) के साथ टकराव उत्पन्न हो जाये, जैसी कि डाक व्यय की दरों अथवा सुरंग मार्ग के भाड़ों के बारे में होता है कि ये दरें और भाड़े कभी भी सेवा की लागत को पूरी नहीं करते। ऐसे उदाहरणों में, आमतौर पर यह वांछनीय माना जाता है कि सामाजिक कल्याण के लिए सरकारी सेवा काफी व्यापक रूप से उपलब्ध कराई जाये, अपेक्षाकृत उसके कि वस्तु की लागत तथा कीमत यदि बराबर होती तो उस स्थिति में उपलब्ध कराई जानी सम्भव होती। अन्य कुछ ऐसे भी उदाहरण है कि जिनमें कुल वस्तुओं तथा सेवाओं के वितरण के लिए सरकारी एकाधिकारों (government monopolies) की स्थापना की जाती है, और इसलिए ताकि एकाधिकारी लाभ कमाये जा सकें। भारत में रेल सेवा तथा बिजली के वितरण की सेवाएँ इसके प्रमुख उदाहरण हैं। फाँसीसी तम्बाकू एकाधिकार (French tobacco monopoly) भी इसी का उदाहरण है तथा सरकार द्वारा संचालित मद्यशालाएँ भी इसी श्रेणी में आती हैं। इन मामलों में यह हो सकता है कि इन एकाधिकारों की स्थापना में सरकार का एकमात्र उद्देश्य लाभ प्राप्त करना ही न हो, बल्कि अपने द्वारा प्रदान की जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं के वितरण पर नियन्त्रण रखना भी हो। जैसा कि टेलर (Taylor) ने कहा है "यह हो सकता है कि इस क्षेत्र में नियन्त्रण (control) के उद्देश्य से की जाने वाली एकाधिकारी कार्यवाही भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण हो जितनी कि लाभ की सम्भावनाएँ।"

सरकार वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन तथा उनकी बिक्री के क्षेत्र में अनेक कारणों से प्रविष्ट हो सकती है। कुछ मामलों में, यह हो सकता है कि प्राइवेट साहसी ऐसे उद्यमों की स्थापना करने के इच्छुक ही न हों या तो इसलिए क्योंकि उनमें बहुत कम लाभ होने की आशा है, अथवा इसलिए क्योंकि उनसे प्रतिफल या लाभों की प्राप्ति बहुत दीर्घकाल के बाद होने की आशा है, उदाहरण के लिए, डाक-सेवा तथा नहरों व बिजली उत्पन्न करने वाले बाँधों का निर्माण आदि। दूसरे कुछ आवश्यक सेवाएँ सरकार द्वारा इसलिए भी हाथ में ली जा सकती हैं जिससे एकाधिकारी किस्म के प्राइवेट संगठनों से उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा की जा सके, जैसे कि नगर परिवहन सेवा (city transport service) तथा जल-प्रदाय सेवा (water supply service)। तीसरे, कुछ अन्य मामलों में, यह माना जाता है कि अमुक सेवा प्राइवेट व्यक्तियों की तुलना में सरकार द्वारा अधिक अच्छी तथा सस्ती प्रदान की जा सकती है, जैसे कि बिजली का उत्पादन तथा वितरण। चौथे, कुछ ऐसे भी मामले हैं जिनमें सरकार उक्त उद्यमों (enterprises) को अपने हाथ में ले लेती है जो कि अर्थव्यवस्था (economy) को लिए मूलभूत महत्त्व के होते हैं। सरकार द्वारा ऐसे उद्यमों से सम्बन्धित वस्तुओं का उत्पादन सम्पूर्ण देश के ही हित में माना जाता है। लोहा व इस्पात, भारी विद्युत पदार्थ, तेल तथा खनिज आदि ऐसे ही उद्यमों के उदाहरण हैं। यहाँ इस बात का उल्लेख करना भी महत्त्वपूर्ण होगा कि इन व्यावसायिक आमदनियों की प्रकृति मुख्यत: उन कीमतों के समान ही होती है जो कि वस्तुओं तथा सेवाओं के गैर-सरकारी उत्पादकों को दी जाती हैं।

3.2.3 प्रशासनिक आय (Administrative Revenues)

जिन प्राप्तियों (receipts) को प्रशासनिक आय की श्रेणी में रखा जाता है, वे हैं–शुल्क या फीस, लाइसेंस, जुर्माने, सम्पत्ति जब्त करने और उत्तराधिकारी के अभाव में सम्पत्ति पर अधिकार करने आदि से होने वाली प्राप्तियाँ तथा विशेष कर-निर्धारण (Special assessments)। इन प्राप्तियों की एक विशेषता तो यह होती है कि व्यक्ति को न्यूनाधिक रूप में इस बात की छूट होती है कि वह इनका भुगतान करे या नहीं । दूसरे, ये प्राप्तियाँ व्यक्ति को प्रत्यक्ष लाभ प्रदान करती हैं या उस पर जुर्माना करती हैं। किन्तु इनकी स्थिति में, यह आवश्यक नहीं है कि भुगतान की गई धनराशि का या तो लाभ के मूल्य से अथवा उस लाभ को प्रदान करने की लागत से घनिष्ठ सम्बन्ध हो। प्रशासनिक आमदनियों की एक अन्य अनोखी विशेषता यह है कि ये सामान्यत: सरकार के प्रशासनिक कार्यों के गौण

नोट

उत्पादन (by product) के रूप में प्राप्त होती हैं। और यही कारण है कि इन्हें 'प्रशासनिक आय' का नाम दिया जाता है।

इन प्रशासनिक आमदनियों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

टास्क कर तथा कीमत में अंतर स्पष्ट करें।

(क) शुल्क या फीस (Fees)

प्रो. सेलिग्मैन फीस की परिभाषा इस प्रकार की है–"शुल्क अथवा फीस उस धनराशि को कहते हैं जो कि सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली प्रत्येक ऐसी आवर्ती सेवा (recurring service) की लागत अदा करने के लिए दी जाती है, जो कि मुख्यत: जनता के हित के लिए होती है किन्तु जो फीस देने वाले को ऐसी विशेष लाभ पहुँचाती है जिसको मापा जा सके।" इस प्रकार, फीस एक ऐसी अदायगी है जो कि उन प्रशासनिक सेवाओं की लागत को पूरा करने के लिए सरकार को दी जाती है जो सम्पूर्ण जनता के हित में सम्पन्न की जाती है किन्तु जो व्यक्तियों को विशेष लाभ प्रदान करती है। अत: फीस केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा अदा की जाती है जो कि सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं से कोई विशेष लाभ प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई छात्र राजकीय विद्यालय में पढ़कर शिक्षा का लाभ प्राप्त करना चाहता है तो उसे उसके लिए फीस देनी होती है।

फीस तथा कीमत में अन्तर (Differences between Fees and Price)

फीस तथा कीमत में कई मुख्य अन्तर पाये जाते हैं–

(1) **कीमत ऐच्छिक, फीस अनिवार्य**–कीमतें तो सदा ही ऐच्छिक अदायगियाँ (voluntary payments) होती हैं, किन्तु फीस अनिवार्य अंशदान भी हो सकती हैं, यद्यपि दोनों का ही भुगतान विशेष सेवाओं के बदले में किया जाता है।

(2) **आदान-प्रदान का तत्व** (quid pro quo)–आदान-प्रदान का तत्व जो कि कर में पाया जाता है, फीस में भी विद्यमान रहता है किन्तु कीमतों में इस तत्व का अभाव है।

(3) **व्यावसायिक क्रियाएँ**–फीस व्यावसायिक सेवा के लिए किया जाने वाला भुगतान नहीं है, बल्कि सरकार की प्रशासनिक क्रियाओं के गौण उत्पादन हैं किन्तु कीमतें सरकार द्वारा की जाने वाली व्यावयायिक क्रियाओं के लिए की जाने वाली अदायगियाँ हैं।

(ख) लाइसेन्स शुल्क (Licence Fees)

लाइसेन्स शुल्क की प्रकृति बहुत कुछ फीस या शुल्क से ही मिलती-जुलती है किन्तु इसमें तथा फीस में कुछ अन्तर भी है। **"लाइसेन्स शुल्क उस स्थिति में अदा किया जाता है जबकि सरकारी सत्ता से यह प्रार्थना की जाती है कि वह कोई अधिक स्पष्ट तथा निश्चित किस्म की सेवा प्रदान करने की बजाय एक अनुमति** (permission) **अथवा विशेषाधिकार** (privilege) **प्रदान कर दे।"** मोटर वाहनों का रजिस्ट्रेशन शुल्क, मोटरें चलाने के परमिट की अदायगी और बन्दूक या रिवाल्वर रखने का लाइसेन्स शुल्क ऐसे ही शुल्क के कुछ उदाहरण हैं। इन मामलों में किसी भी व्यक्ति को शुल्क अदा करने के लिए बाध्य नहीं किया जाता, अपितु जो भी व्यक्ति बन्दूक या मोटर का उपयोग करना चाहता है तो उसके लिए उसे आवश्यक शुल्क का भुगतान करना होता है। शुल्क अदा करने पर शुल्कदाता को जो लाभ प्राप्त होता है वह बन्दूक रखने या मोटर का उपयोग करने को कानूनी व व्यावहारिक सुविधा के रूप में होता है।

ऐसे शुल्क का उद्देश्य कभी-कभी यह भी होता है कि विभिन्न प्रकार की क्रियाओं एवं गतिविधियों का नियमन अथवा नियन्त्रण किया जाये; उदाहरण के लिए, कानून व व्यवस्था की स्थापना करने के उद्देश्य से जिम्मेदार व्यक्तियों के बन्दूकों व रिवाल्वरों के लाइसेन्स दिये जाते हैं। इसी प्रकार, शराब की बिक्री पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए शराब की दुकानें चलाने के लिए लाइसेन्स दिये जाते हैं। जन-सुरक्षा के हित में, मोटर-चलाकों से मोटर चलाने के लिए लाइसेन्स प्राप्त के लिए प्राप्त करने के लिए कहा जाता है और ये लाइसेन्स केवल तभी प्राप्त किये जाते हैं जबकि व्यक्ति किसी वाहन (vehicle) को चलाने की दृष्टि से ठीक (fit) होता है। अत: लाइसेन्स शुल्क में नियमन या नियन्त्रण का जो तत्व पाया जाता है वह इसे शुल्क तथा कर दोनों ही से पृथक् करता है।

नोट

(ग) विशेष कर-निर्धारण (Special Assessments)

प्रो. सेलिग्मैन के शब्दों में, "विशेष कर-निर्धारण या विशेष उगाही (special assessment) उस अनिवार्य अंशदान को कहते हैं जो प्रदान किये जाने वाले विशेष लाभों के अनुपात में वसूल किया जाता है और जिसका उद्देश्य लोकहित की दृष्टि से अधिकार में ली गई सम्पत्ति में विशेष सुधार करने की लागत अदा करना होता है।" जब सरकार सड़क-निर्माण, नालियों की व्यवस्था तथा सड़कों व गलियों में प्रकाश की व्यवस्था जैसे सार्वजनिक सुधार के कुछ कार्य अपने हाथ में लेती है, तो ऐसे सुधारों से सम्पूर्ण जनता को तो सामान्य लाभ पहुँचता ही है, किन्तु उन व्यक्तियों को विशिष्ट लाभ होता है जिनकी दुकान-मकान आदि सम्पत्ति उस सड़क के किनारे होती है। इन सुधारों के परिणामस्वरूप, इन सम्पत्तियों के मूल्यों अथवा किरायों में वृद्धि हो जाती है। अत: हो सकता है कि सरकार इस प्रकार किये गये खर्च का कुछ भाग वसूल करने के लिए उस क्षेत्र के लोगों पर कोई विशेष कर निर्धारित कर दे। ऐसा विशेष कर-निर्धारण, सामान्यत: सम्पत्ति के मूल्य में होने वाली वृद्धि के अनुपात में ही किया जाता है और इस दृष्टि से यह भिन्न होता है।

विशेषताएँ (Characteristics)–सैलिग्मैन के अनुसार विशेष कर-निर्धारण में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं–

(1) इसमें विशेष उद्देश्य (special purpose) का तत्व पाया जाता है।

(2) इसमें सरकारी सेवा से मिलने वाले विशिष्ट लाभ को मापा जा सकता है।

(3) विशेष कर-निर्धारण (special assessment) आरोही (progressive) नहीं होते, बल्कि प्राप्त होने वाले लाभ (benefits) के अनुसार अनुपाती (proportional) होते हैं।

(4) ये विशिष्ट स्थानीय सुधारों के लिए लगाये जाते हैं।

निर्धारण की विशेष कर-निर्धारण से तुलना
(Comparison of Special Assessment with a Tax)

समानताएँ (Similarities)–इसमें निम्नलिखित समानताएँ पाई जाती हैं–

(1) **उद्देश्य** (Object)–दोनों में ही सार्वजनिक उद्देश्य का तत्व (element of public purpose) पाया जाता है, क्योंकि सरकारी आय चाहे कर (Tax) के रूप में प्राप्त हुई हो अथवा विशेष कर-निर्धारण (special assessment) के रूप में, सम्पूर्ण रूप में समाज के और साथ-साथ विशिष्ट व्यक्ति के हित के लिए खर्च की जाती है।

(2) **अनिवार्य अंशदान** (Compulsory Contribution)–कर की तरह विशेष कर-निर्धारण भी एक अनिवार्य अंशदान है। अत: इन दोनों में ही अनिवार्यता का तत्व भी पाया जाता है।

असमानताएँ (Dis-similarities)–कर तथा विशेष कर-निर्धारण के बीच तीन असमानताएँ (Dis-similarities) भी पाई जाती हैं। ये निम्नलिखित हैं–

(1) **उपयोग की विभिन्नता** (Dis-similarities of Assessment)–करों के रूप में प्राप्त होने वाली आय सरकार के सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति में लगाई जाती है, किन्तु विशेष कर-निर्धारण या विशेष उगाही के रूप में समाप्त होने वाली आय विशिष्ट स्थानीय सुधारों (special local improvement) में लगाई जाती है।

(2) **निर्धारण का आधार** (Basis of Assessment)–कर को लगाने के आधार अनेक हो सकते हैं, जैसे कि आय, व्यय; सम्पत्ति का मूल्य आदि; किन्तु विशेष कर-निर्धारण या विशेष उगाही को लगाने का आधार केवल एक होता है, वह है लाभ (benefit)। अन्य शब्दों में, विशेष कर-निर्धारण प्राप्त होने वाले लाभों के अनुपात में लगाया जाता है।

(3) **उद्देश्य की भिन्नताएँ** (Dis-similarities of Object)–विशेष कर-निर्धारण अधिकांशतया कुछ पूँजी विकास योजनाओं के लिए धन प्राप्त करने के उद्देश्य से लगाये जाते हैं, किन्तु कर (taxes) पूँजीगत विकास योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के लिए भी लगाये जाते हैं और सरकार के चालू व्यय की पूर्ति के लिए भी।

नोट

(4) **अदायगी की भिन्नताएँ** (Dis-similarities of Payment)–विशेष कर-निर्धारण कीमतों से भी इस दृष्टि से भिन्न हैं क्योंकि कीमतों की अदायगी ऐच्छिक होती है जबकि विशेष कर-निर्धारण की अदायगी अनिवार्य होती है।

(घ) अर्थदण्ड तथा जुर्माने (Fines and Penalties)

अर्थदण्ड तथा जुर्माने सरकारी आय के महत्त्वपूर्ण स्त्रोत नहीं हैं। अर्थदण्ड (fine) का सम्बन्ध दण्ड (punishment) से होता है और जुर्माना (penalty) कानून के उल्लंघन पर किया जाता है। इन दोनों का ही उद्देश्य किसी अनुचित कार्य के लिए दण्ड देना तथा अपराधों को रोकना होता है।

(ङ) जमानत या सम्पत्ति आदि जब्त करना (Forfeitures)

जमानतों (bails) या बाण्डों (bonds) अथवा सम्पत्ति को जब्त करने से आशय उन जुर्मानों से होता है जो कि अदालतों द्वारा लोगों पर इसलिए किये जाते हैं कि वे निश्चित तिथि को अदालत में उपस्थित होने में असफल रहे अथवा उन्होंने पहले किये गये ठेकों अथवा करारों (contracts) को पूरा नहीं किया। स्पष्ट है कि सरकार की आय के इस स्त्रोत का भी महत्त्व बहुत ही कम है।

(च) मृतक की सम्पत्ति पर कब्जा (Escheat)

सरकार की आय का यह स्त्रोत ऐसे व्यक्ति की सम्पत्ति पर सरकार के दावे का प्रतीक है जो बिना कानून उत्तराधिकारी नियत किये अथवा अपनी सम्पत्ति को देने के बारे में बिना वसीयत किये ही मर गया हो। इस स्थिति में, उस व्यक्ति की बैंक में जमा धनराशियाँ तथा अन्य सभी सम्पत्तियाँ सरकार के अधिकार में चली जाती हैं। सम्पत्ति पर कब्जे के इस अधिकार (escheat) के अन्तर्गत, सरकार भंग की गई शिक्षा संस्थाओं अथवा अन्य न्यासों (trusts) की बेवारसी सम्पत्ति (unclaimed property) पर भी अपना कब्जा कर सकती है। सरकारी आय का यह भी कोई महत्त्वपूर्ण स्त्रोत नहीं है।

3.2.4 उपहार तथा अनुदान (Gifts and Grants)

भेंट या उपहार (gifts) वे ऐच्छिक अंशदान हैं जो प्राइवेट व्यक्ति अथवा गैर-सरकारी दाताओं (donors) द्वारा ऐसे विशिष्ट कार्यों के लिए सरकार को दिये जाते हैं जैसे कि युद्धकाल या संकटकाल के समय सहायता-कोष (relief fund) अथवा प्रतिरक्षा कोष (defence fund)। ऐसे अंशदान देशभक्त, दानशील एवं जनसेवी व्यक्तियों द्वारा युद्ध, अकाल तथा ऐसे ही अन्य संकटकालीन अवसरों पर दिये जाते हैं।

आधुनिक राजस्व व्यवस्था में, केवल युद्धकाल या संकटकाल को छोड़कर इन उपहारों को कोई उल्लेखनीय स्थान प्राप्त नहीं है। प्राचीन काल की राजकीय व्यवस्था में अवश्य इनको महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था जबकि राजा, नवाब तथा जागीरदार आदि शासक अपनी प्रजा से 'नजराने' लिया करते थे। आजकल उपहार (gifts) की कुल मात्रा (अनुदानों की नहीं) इतनी थोड़ी होती है कि राजस्व-व्यवस्था में उसका स्थान नाममात्र का ही होता है।

उपहारों तथा अनुदानों के रूप में होने वाली प्राप्तियों की विशेषता यही है कि ये ऐच्छिक प्रकृति की होती हैं और इनको देने वाला व्यक्ति बदले में किसी भी प्रत्यक्ष लाभ की आशा नहीं करता। अनुदानों (grants) की स्थिति में, दाता सरकार (donor government) अन्य किसी स्तर पर सरकारी कार्य को सम्पन्न करने के लिए वित्तीय सहायता देती है। संघीय शासन वाले देशों में, केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को और राज्य सरकारें स्थानीय सरकारों (local governments) को, साधारणत: इसलिए सहायक अनुदान (grants-in-aid) देती है ताकि उन्हें इस योग्य बनाया जा सके कि वे अपने कार्यों को सफलतापूर्वक कर सकें अथवा एकरूपता (uniformity)। अथवा कार्यकुशलता की दृष्टि से कुछ ऐसे विशिष्ट कार्यों को अपने हाथों में ले सकें जैसे कि राजमार्गों का निर्माण तथा रख-रखाव (maintenance)। अत: ये अनुदान शर्तरहित (unconditional) भी हो सकते हैं अथवा केवल कुछ विशिष्ट कार्यों को सम्पन्न करने के लिए भी दिये जा सकते हैं।

कभी-कभी एक देश की सरकार अन्य देश से अनुदान प्राप्त करती हैं जिसे आमतौर पर **विदेशी सहायता** (foreign aid) कहा जाता है। विदेशी सहायता कई मदों (plan heads) के बीच परस्पर सह-सम्बन्ध बना रहे। तथापि, उचित यह होगा कि इस वर्गीकरण को छेड़ा न जाये, अन्यथा संसद के प्रति जबावदेही तथा समाज के प्रति उत्तरदायीता के जो ठोस लाभ इससे अब प्राप्त होते हैं, वे समाप्त हो जायेंगे। परन्तु सरकार को यह अवश्य करना चाहिये कि बजट को खर्चों की योजना की मदों के अनुसार वितरित करने की एक ऐसी पृथक् व्यवस्था की जाये जिससे कि निष्पत्ति बजट के निर्माण का उद्देश्य पूरा हो सके।

नोट

3.3 राजस्व/आगम प्राप्तियाँ (Revenue Receipts)

वह प्राप्ति जिसके द्वारा दायित्व की उत्पत्ति अथवा संपत्ति में कमी नहीं होती, उसे आगम प्राप्ति कहा जाता है। यह प्राप्ति स्वभाव से निरंतर एवं सामान्य होती हैं। प्रत्येक सरकार आगम प्राप्त करती है। आगम प्राप्ति गैर-कर स्रोत से भी प्राप्त की जा सकती है, जैसे—ब्याज से प्राप्ति, लाभांश, लाभ एवं बाह्य प्राप्ति। सरकार, राज्य सरकार सामान्य एवं अन्य लोगों को प्रदान किए गए ऋण से ब्याज प्राप्त करती है। यह लाभांश एवं अपने स्वयं के उद्यम से भी प्राप्त की जाती है। सरकार विदेशों से भी बाह्य ऋण के रूप में वित्तीय सहायता प्राप्त करती हैं।

सरकार कर स्रोत एवं गैर-कर स्रोत द्वारा आगम की उत्पत्ति करती है। आइये, अब हम कर स्रोत द्वारा आगम की प्राप्ति की विवेचना करते हैं :

3.3.1 कारों द्वारा आगम की उत्पत्ति (Generation of Revenue Through Taxes)

कर सरकार के वैधानिक एवं अनिवार्य भुगतान है।

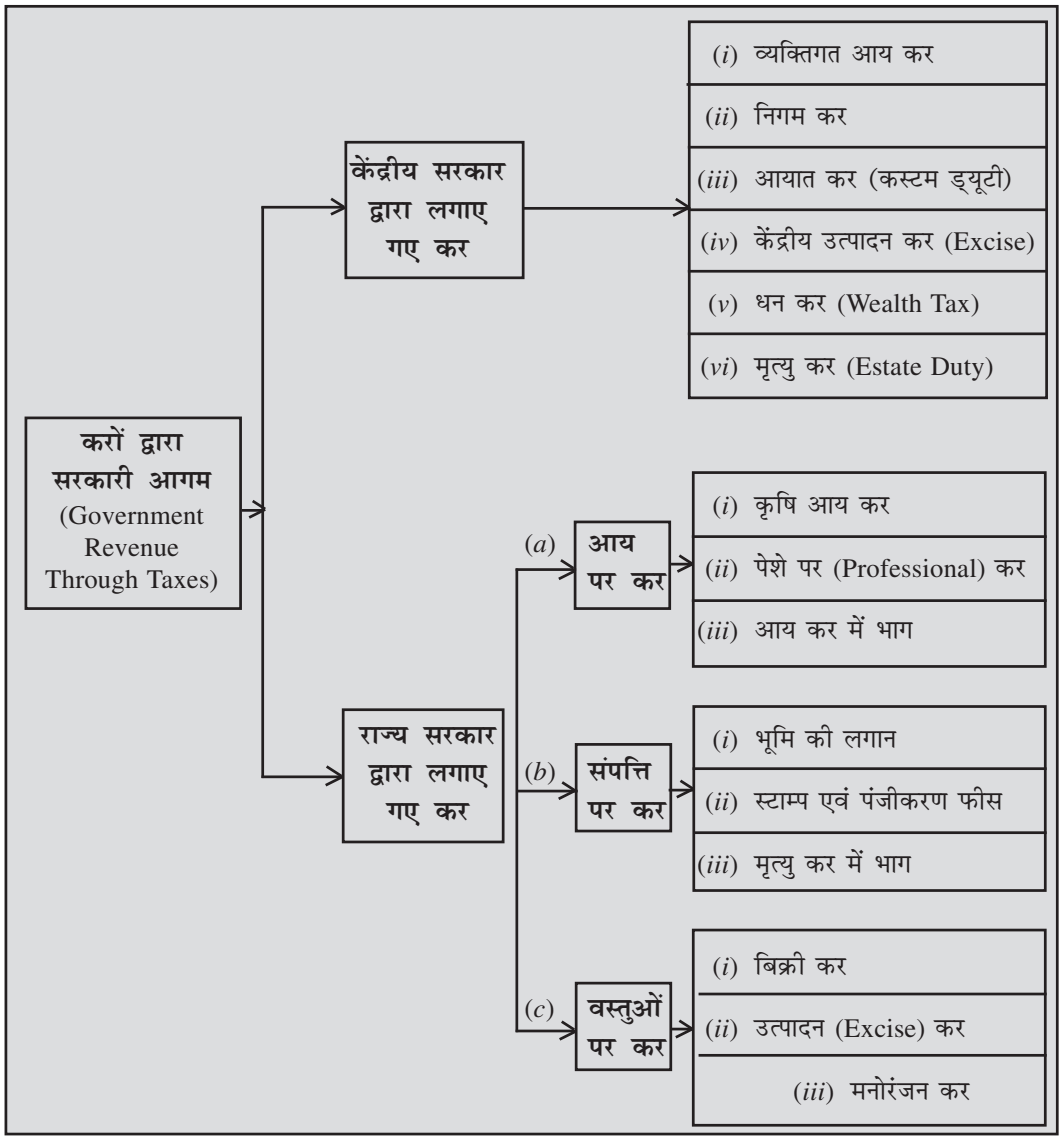

नोट

3.3.2 केंद्रीय सरकार को कर से प्राप्ति (Tax Revenue of Central Government)

केंद्रीय सरकार समस्त/पूर्ण देश पर कर लगाने का अधिकार रखती है। भारत में केंद्रीय सरकार के कर आगम के मुख्य स्त्रोत निम्नलिखित हैं :

(*i*) **व्यक्तिगत आय कर** (Personal Income Tax)–व्यक्तियों द्वारा सृजित की गई आय जैसे वेतन, संपत्ति, पेशा, व्यवसाय एवं अन्य स्त्रोत से प्राप्त आय पर आय कर लगाया जाता है। सामान्यतया व्यक्तिगत आय कर उद्यमी द्वारा आय के स्त्रोत अथवा उसकी उत्पत्ति के स्त्रोत (Tax deduction at source) पर लगाया जाता है।

व्यक्तिगत आय कर हिंदू अविभाजित परिवारों, अपंजीकृत फर्म एवं अन्य व्यक्तियों के संघों (Association) पर भी लगाया जाता है। कर लगाने के उद्देश्य से समस्त स्त्रोत/साधनों से प्राप्त आय को जोड़ते हैं और विधान के अनुसार आवश्यक कटौती देने के बाद कर निर्धारण किया जाता है।

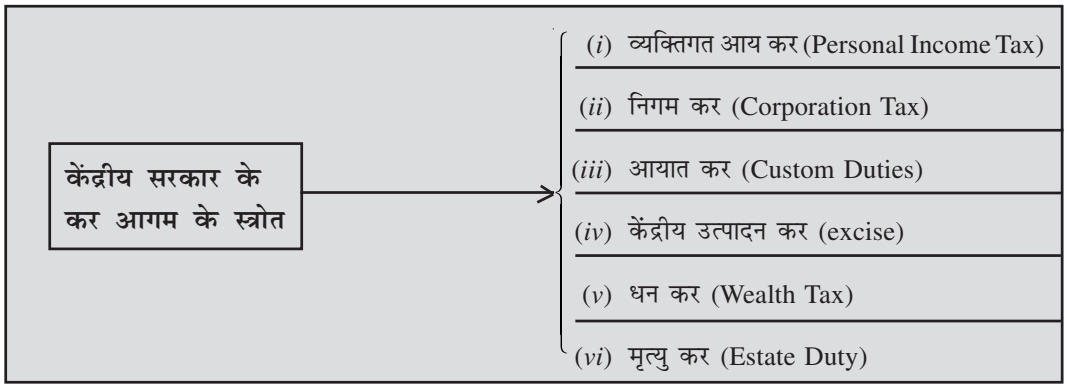

भारत में बढ़ती दर (Progressive rate) अर्थात अधिक आय स्तर पर अधिक दर से कर की नीति को अपनाया जाता है। 1974-75 से पूर्व आय कर की सीमांत दर 97.75% थी, जोकि विश्व में सबसे अधिक थी। बाद में यह घटाकर 77%, 50%, 40% एवं 30% हो गई। कभी-कभी आय कर पर अतिरिक्त कर (Surcharge) भी लगाया जाता है। बढ़ती दर पर कर प्रणाली (Progressive taxation) अपना कर आय की असमानता को कम करने का प्रयास किया जाता है, परंतु यह पूर्ण रूप से असफल है। अब यह कहना सरल है कि आय कर आज के दिनों में आगम प्राप्ति का एक स्त्रोत है। यह वित्तीय आगम के रूप में इसकी उपयोगिता सीमित है।

(*ii*) **निगम कर** (Corporation Tax)–पंजीकृत कंपनी एवं निगमों की आय पर लगाया गया आय कर निगम कर कहलाता है। कंपनियों एवं निगमों से प्राप्त आय कर अलग से निगम कर के रूप में प्राप्त करने का कारण यह है कि कंपनी एवं निगम की अपने स्वामियों से अलग पहचान होती है। इसलिए उनसे अलग आय कर प्राप्त किया जाता है। 1960-61 तक निगमों से आंशिक रूप से कर प्राप्त किया जाता था। एक निगम के लिए आवश्यक था कि वह अंशधारियों को देय लाभांश पर आय कर काट कर भुगतान करे। प्रत्येक अंशधारी को काटे गए कर की छूट प्राप्त होती थी। 1960-61 से निगमों को स्वतंत्र इकाई (entity) माना गया एवं अंशधारियों को कर की छूट नहीं दी जाती है। निगम कर निर्धारित दरों पर प्राप्त किए जाते हैं। कुछ छूट जैसे घिसावट एवं विकास की छूट आदि को भी नियमों के अंतर्गत प्रदान किया जाता है।

(*iii*) **आयात कर** (Custom Duties)–**वस्तुओं के आयात एवं निर्यात पर प्राप्त किया जाने वाला कर** (Custom Duties) **कहलाता है।** आयात कर एक प्रकार का अप्रत्यक्ष कर है, जिसका भार कर भुगतान कर्ता द्वारा दूसरों पर हस्तांतरित किया जाता है। यह केंद्रीय सरकार के आगम का एक बड़ा स्त्रोत है। आगम के स्त्रोत के रूप में आयात कर का महत्त्व कम होना प्रारंभ हो गया है, क्योंकि सरकार भारतीय विकासशील उद्योगों की सुरक्षा के लिए आयात में कमी की नीति अपनाती है।

इससे आयात में कमी होती है एवं आयात कर की राशि में कमी हो जाती है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान एवं युद्ध के उपरांत विभिन्न उपभोक्ता वस्तुओं के आयात पर प्रतिबंध लगा दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप आयात कर में कमी हो गई। पूँजी उपकरणों, आवश्यक कच्चे माल, खाद्यान्न, पेट्रोल आदि के आयात में वृद्धि होने के कारण आयात में वृद्धि अवश्य हुई है, परंतु आयात कर की ऊँची दर को समर्थन नहीं प्राप्त हुआ। इन दिनों आयात कर दुबारा सरकारी आगम का एक महत्त्वपूर्ण स्त्रोत बन गया है।

नोट

भारत अब GATT (General Agreement on Trade and Tarrifs) से जुड़ गया। इसलिए इसका दायित्व बन गया कि विभिन्न वस्तुओं के आयात पर GATT द्वारा निर्धारित दरों पर कर ले।

(*iv*) **केंद्रीय उत्पादन कर** (Union Excise Duties)**–कुछ विशेष वस्तुओं के उत्पादन पर लगने वाला कर उत्पादन कर (Excise Duty) कहलाता है।** यह अप्रत्यक्ष कर का एक स्रोत है, जिसका भार कर भुगतानकर्ता द्वारा वस्तु के क्रेता पर हस्तांतरित किया जाता है। केंद्रीय सरकार द्वारा शराब (Liqours) एवं नशीले पदार्थ (Narcotics) को छोड़कर अन्य वस्तुओं पर उत्पादन कर (Excise duty) लगाया जाता है। प्राप्त केंद्रीय उत्पादन कर वित्तीय कमीशन के निर्णयानुसार केंद्रीय एवं राज्य सरकार में विभाजित कर दिया जाता है।

द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारंभ होने से पूर्व तक केंद्रीय उत्पादन कर का महत्त्व बहुत सीमित था। 13 वीं शताब्दी तक उत्पादन कर केवल पाँच वस्तुओं पर लगाया जाता था। उत्पादन कर कपड़ा, चीनी, चाय, तंबाकू, सीमेंट एवं अन्य दूसरी वस्तुओं पर अधिक प्राप्त किया जाता है। विलासिता संबंधी वस्तुओं पर भारी मात्रा में उत्पादन कर लगाया जाता है। इस स्रोत से आगम की प्राप्ति कुछ विशेष नहीं होती।

(*v*) **धन कर** (Wealth Tax)**–केंद्रीय सरकार द्वारा एकत्रित धन पर लगाया जाने वाला कर धन कर कहलाता है।** कुछ विशेष व्यक्ति अधिक मात्रा में आय प्राप्त करते हैं, परंतु अधिक मात्रा में व्यय नहीं करते। परिणामस्वरूप उनके पास काफ़ी धन जमा हो जाता है जिस पर धन कर लगाया जाता है।

(*vi*) **मृत्यु कर** (Estate Duty)–कुछ व्यक्ति मरणोपरांत अपने उत्तराधिकारियों के लिए बहुत-सा धन छोड़ जाते हैं, जो उन्हें बिना किसी परिश्रम एवं बलिदान के प्राप्त हो जाता है। केंद्रीय सरकार इस प्रकार प्राप्त हुए धन पर उत्तराधिकारियों से मृत्यु कर प्राप्त करती है।

3.3.3 राज्य सरकार की कर द्वारा प्राप्ति (Tax Revenue of State Government)

राज्य सरकार भी अपने राज्य में कुछ कर लगाती है। राज्य सरकार द्वारा लगाए जाने वाले कर निम्नलिखित हैं—

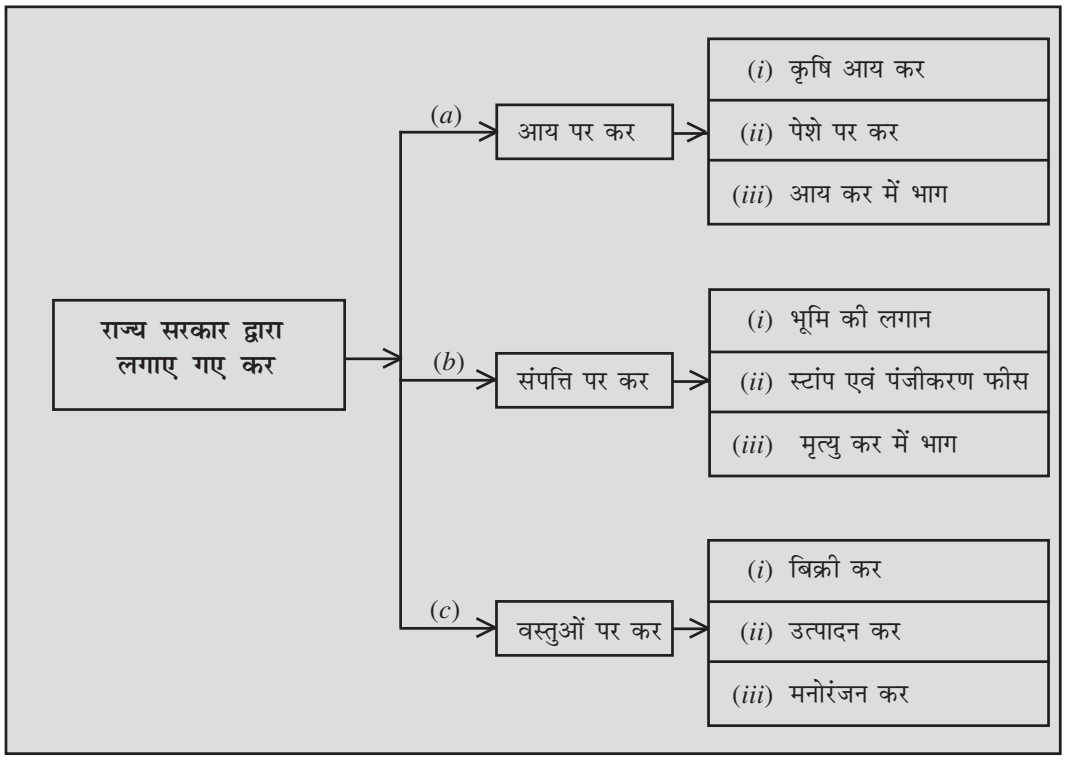

नोट

(*a*) **आय पर राज्य सरकार द्वारा लगाए गए कर** *(Taxes levied by State Government on Income)*

राज्य सरकार निम्नलिखित आय पर कर लगाती है :

(*i*) **कृषि आय कर** (Agricultural Income)— कुछ राज्य ऐसे हैं जिनमें कृषि आय पर कर लगाया जाता है। सामान्यतया कृषि आय पर बहुत से राज्यों में कर नहीं लगाया जाता।

(*ii*) **पेशे पर कर** (Profession Tax)—राज्य सरकार पेशे पर कर जैसे—वकील, चार्टर्ड एकाउंटेंट, डॉक्टर आदि पर पेशा कर लगाती है। यह कर विक्रय कर की भाँति लगाया जाता हैं क्योंकि इनमें सेवाओं का विक्रय होता है।

(*iii*) **आय कर में भाग** (Share in Income Tax)—केंद्रीय सरकार द्वारा प्राप्त किए गए आय कर में से राज्य सरकार अपना भाग प्राप्त करती है। वितरण का अनुपात वित्तीय कमीशन द्वारा निर्धारित होता है।

(*b*) **राज्य सरकार द्वारा संपत्ति पर लगाया गया कर** *(Taxes levied by the State Government on Property)*

राज्य सरकार को व्यक्तियों की राज्य में स्थित संपत्ति पर कर लेने का अधिकार प्राप्त है :

(*i*) **भूमि की लगान** (Land Revenue)—यह राज्य सरकार के आगम का बहुत महत्त्वपूर्ण स्रोत है। भूमि के स्वामी को अपने स्वामित्त्व की भूमि पर लगान का भुगतान करना आवश्यक है।

(*ii*) **स्टांप एवं पंजीकरण फीस** (Stamp and Registration Fee)—राज्य सरकार कचहरी के स्टाम्प कागज़ का विक्रय करती है, जोकि समझौते, प्रसंविदे, विक्रय एवं क्रय समझौते (deeds) आदि में उपयोग किया जाता है। संपत्ति के पंजीकरण की स्थिति में (जैसे—भूमि, भवन आदि) राज्य सरकार द्वारा पंजीकरण फीस प्राप्त की जाती है। आगम लाइसेंस फीस, सड़क कर आदि से भी प्राप्त की जाती है।

(*iii*) **मृत्यु कर में भाग** (Share in Estate Duty)—केंद्रीय सरकार द्वारा एकत्रित मृत्यु कर में राज्य सरकार को भी भाग प्राप्त होता है। इसलिए यह भी राज्य सरकार के लिए आय का साधन है।

(*c*) **राज्य सरकार द्वारा वस्तुओं पर लगाया गया कर** *(Taxes levied by the State Government on Commodities)*

राज्य सरकार को वस्तुओं पर भी कर प्राप्ति का अधिकार होता है :

(*i*) **बिक्री कर** (Sales Tax)—यह राज्य सरकार के लिए आगम का महत्त्वपूर्ण साधन है। यह कर व्यापारी द्वारा किए गए विक्रय पर प्राप्त किया जाता है। इन दिनों बिक्री कर 10% की दर से लगाया जाता है। यह एक अप्रत्यक्ष कर है।

(*ii*) **उत्पादन कर** (Excise duties)—राज्य उत्पादन कर (excise duty), शराब (liquour) एवं नशीले पदार्थ (narcoties) के राज्य में उत्पादन पर लगाया जाता है।

(*iii*) **मनोरंजन कर** (Entertainment Tax)—राज्य सरकार समस्त मनोरंजन क्रियाओं पर मनोरंजन कर लगाती है। सिनेमा टिकटों एवं स्टेज के प्रोग्राम जैसे—सर्कस, कवि सम्मेलन, मुशायरा एवं कलाकारों की कला के लिए टिकटों की बिक्री की गई हो तो मनोरंजन कर लगाया जाता है।

बोझ के आधार पर करों का वर्गीकरण (Classification of Taxes on the Basis of Incidence)

करों का कर के बोझ के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है।

नोट

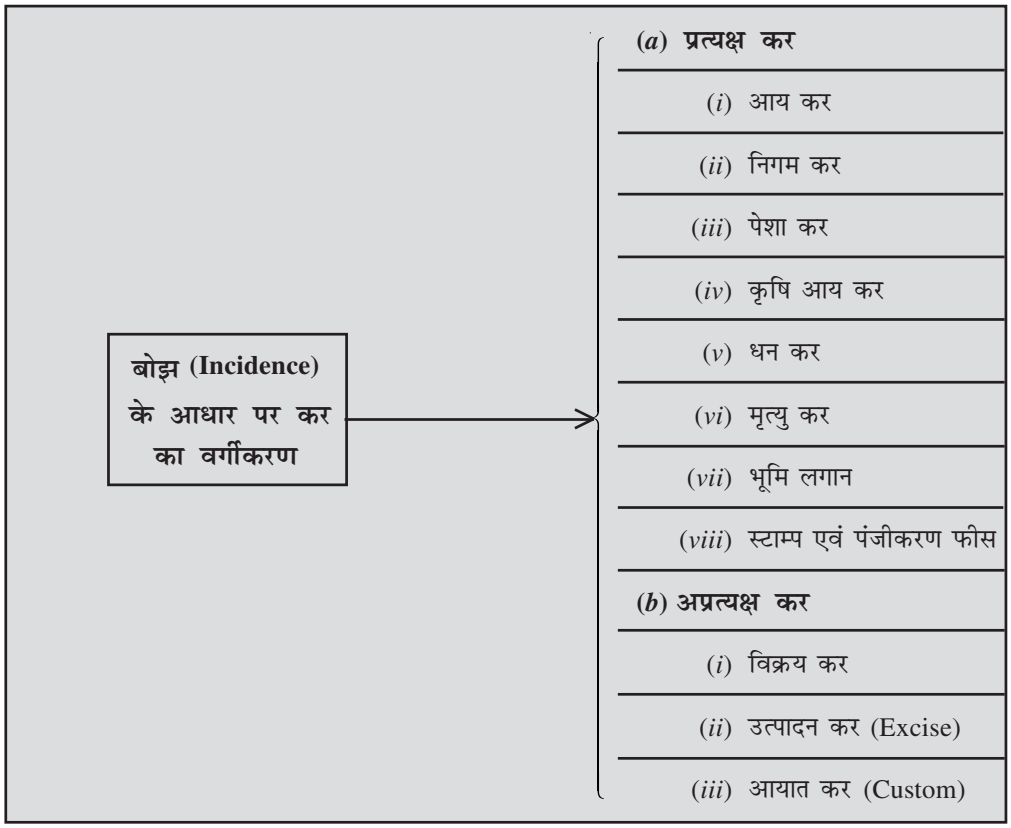

(*a*) **प्रत्यक्ष कर** (Direct taxes)–आय कर, निगम कर, धन कर, मृत्यु कर एवं पुरस्कार कर आदि।

(*b*) **अप्रत्यक्ष कर** (Indirect taxes)–आयात कर (Customs), उत्पादन कर (excise) एवं मनोरंजन कर।

(*a*) प्रत्यक्ष कर (Direct Taxes)

इन करों का भार अन्य व्यक्तियों पर हस्तांतरित नहीं किया जा सकता। यह करदाता द्वारा स्वयं सहन किया जाता है। उदाहरणस्वरूप, आयकर दाता को कर का भार स्वयं ही उठाना पड़ता है। महत्त्वपूर्ण प्रत्यक्ष कर निम्नलिखित हैं :

(*i*) **आय कर** (Income tax)–कर व्यक्तियों की आय, वेतन, व्यवसाय, पेशे, संपत्ति एवं अन्य स्रोत से प्राप्त आय पर लगाये जाते हैं।

(*ii*) **निगम कर** (Corporation tax)–यह कंपनी एवं व्यवसायिक निगमों की आय पर लगाए जाते हैं।

(*iii*) **पेशा कर** (Profession tax)–यह पेशेवरों की आय जैसे–डॉक्टर, चार्टर्ड एकाउंटेंट, कलाकार एवं अभिनेता आदि पर राज्य सरकार द्वारा लगाया जाता है।

(*iv*) **कृषि आय कर** (Agricultural income tax)–कुछ राज्य कृषि आय पर भी कर लगाते हैं।

(*v*) **धन कर** (Wealth tax)–व्यक्तियों के एकत्र किए गए अत्यधिक धन पर यह कर लगाया जाता है।

(*vi*) **मृत्यु कर** (Estate duty)–यदि उत्तराधिकार में प्राप्त धन एक सीमा से अधिक होता है तो यह कर लगाया जाता है।

(*vii*) एवं (*viii*) **भूमि की लगान एवं पंजीकरण**–ये आगम राज्य सरकार द्वारा प्राप्त की जाती है जैसे—भूमि की लगान, स्टाम्प एवं पंजीकरण फीस आदि।

(*b*) अप्रत्यक्ष कर (Indirect tax)

इन करों का भार करदाता पर नहीं होता। इनका बोझ करदाता द्वारा अन्य व्यक्तियों पर हस्तांतरित कर दिया जाता है। इन करों के महत्त्वपूर्ण उदाहरण निम्नलिखित हैं :

नोट

(*i*) **विक्रय कर** (Sales tax)—यह कर राज्य सरकार द्वारा लगाया जाता है। यह कर सरकार को व्यापारियों द्वारा भुगतान किया जाता है। व्यापारी इस कर की राशि ग्राहकों से प्राप्त करता है।

(*ii*) **उत्पादन कर** (Excise tax)—केंद्रीय उत्पादन कर चीनी, रुई, कपड़ा, तंबाकू, माचिस, सीमेंट एवं स्प्रिट आदि के उत्पादन पर लगाया जाता है। राज्य सरकार द्वारा उत्पादन कर शराब (liquor) अफ़ीम (opium) अन्य दवाओं एवं नशीले पदार्थों (narcotics) आदि पर लगाया जाता है।

उत्पादन कर सरकारी आगम का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इससे हमारी राष्ट्रीय आगम का लगभग 37% प्राप्त होता है।

(*iii*) **आयात कर** (Customs duty)—यह आयात की गई वस्तुओं पर लगाया जाता है। यह आगम का स्रोत है एवं हमारे उद्योगों को सुरक्षा प्रदान करता है। कर नीति का उद्देश्य सरकार को उपयुक्त आय प्रदान करके आर्थिक विकास करना एवं आय की असमानता को कम करना है।

3.4 आगम के गैर-कर स्त्रोत (Non-tax Sources of Revenue)

आगम के कर स्रोत के अतिरिक्त सरकार गैर-कर स्रोत से भी आगम का सृजन करती है। आइए अब हम आगम के गैर-कर स्रोत की विवेचना करें।

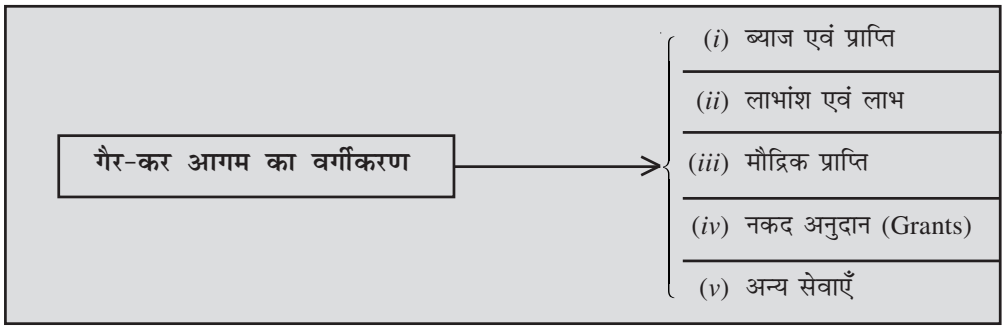

गैर-कर स्रोत का योगदान बहुत ही सीमित होता है। यह सरकार द्वारा सेवाएँ प्रदान करने पर प्राप्त किया गया आगम है।

(*i*) **ब्याज एवं प्राप्ति** (Interest and Receipts)—ब्याज की राज्य सरकार, केंद्रीय प्रशासन, रेलवे, पोस्ट एवं टेलीग्राफ, अन्य संगठनों एवं उपक्रमों को प्रदान किए गए ऋण एवं पेशगी (advance) पर प्राप्ति होती है।

(*ii*) **लाभांश एवं लाभ** (Dividend and Profit)—सरकार सार्वजनिक उपक्रमों में लाभ का सृजन करती है। लाभांश अन्य कंपनियों में निवेश करने पर प्राप्त होता है।

(*iii*) **मौद्रिक प्राप्ति** (Monetary Receipts)—सरकार के एजेंट के रूप में भारतीय रिज़र्व बैंक करंसी नोट जारी करता है। एक रुपये का नोट वित्त मंत्रालय के सचिव द्वारा जारी किया जाता है।

(*iv*) **नकद अनुदान** (Cash Grants)—विदेशों से ऋण एवं अनुदान (Grants) की प्राप्त राशि को नकद सहायता कहते हैं। यह विश्व बैंक एवं अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से प्राप्त किया जा सकता है।

(*v*) **अन्य सेवाएँ** (Other Services)—नाममात्र प्राप्तियाँ निम्नलिखित साधनों से प्राप्त की जाती है :

(*a*) सामान्य सेवाएँ, लेखन सामग्री, प्रिंटिंग, सार्वजनिक कार्य आदि।

(*b*) **सामाजिक एवं समुदायिक सेवाए**–सेवाएँ जैसे—शिक्षा, पारिवारिक कल्याण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, आवास व्यवस्था, रोज़गार एवं श्रम से नाममात्र प्राप्ति होती है।

(*c*) **आर्थिक सेवाएँ**—कृषि, उद्योग पानी एवं शक्ति विकास एवं खनिज तत्त्व से प्राप्तियाँ नाममात्र प्राप्ति के अंतर्गत आती हैं।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

6. कर व्यक्ति द्वारा सरकार को दिये जाने वाले अनिवार्य अंशदान है।
7. कर करदाता पर व्यक्तिगत दायित्व नहीं डालता है।
8. भूमि कर केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा अदा किया जाता है जिनके पास भूमि होती है।
9. कर के भुगतान में त्याग की भावना निहित नहीं होती है।
10. सरकारी सेवा द्वारा व्यक्तियों को लाभ प्रदान किया जाता है।

3.5 सारांश (Summary)

- सरकार की लोकप्रियता एवं सफलता सम्पूर्ण सार्वजनिक आय पर निर्भर करती है। इस प्रकार निजी व्यक्तियों तथा सरकार, दोनों के लिए सार्वजनिक आय के तरीकों तथा उसकी प्रकृति के अध्ययन का व्यावहारिक महत्त्व अधिक हो गया है।
- कर वे अनिवार्य भुगतान (compulsory payments) हैं जो करदाता द्वारा सरकार के प्रति बिना किसी ऐसी आशा से किये जाते हैं कि उसे उनके बदले में कोई प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होगा। बेस्टेबिल के अनुसार, "कर व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के पास विद्यमान धन का वह अनिवार्य अंशदान (compulsory contribution) है जो कि सरकारी कार्यों को सेवा के बदले में दिया जाता है।"
- कर नागरिक द्वारा अथवा निवास तथा सम्पत्ति आदि के कारण से देश की सीमा में रहने वाली प्रजा द्वारा राज्य को दिया जाने वाला अंशदान है और यह अंशदान सामान्य उपयोग (Common use) के लिए ही दिया जाता है। चूँकि यह एक अनिवार्य अंशदान है, अत: कोई भी व्यक्ति कर की अदायगी से इन्कार नहीं कर सकता।
- कर की अदायगी, राज्य द्वारा व्यक्ति के लिए की जाने वाली किसी विशेष सेवा के भुगतान के लिए नहीं की जाती और न कर इसलिए अदा किया जाता है कि करदाता को राज्य द्वारा कोई विशिष्ट लाभ प्रदान किया गया है।
- कर प्रत्येक नागरिक द्वारा सरकार को दी जाने वाली वह कीमत है जो कि वह उन सामान्य सार्वजनिक सेवाओं की लागत के अपने उस हिस्से के बदले में अदा करता है जिसे वह उपयोग करता है।
- व्यावसायिक आय वे आमदनियाँ हैं जो कि सरकार को अपने द्वारा उत्पादित वस्तुओं अथवा सेवाओं की कीमतों के रूप में प्राप्त होती हैं।
- कर तो एक अनिवार्य अंशदान है जो ऐसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अदा किया जाता है जिस पर कि वह लगाया जाता है किन्तु कीमत उन व्यक्तियों द्वारा अदा की जाती है, जो सरकार द्वारा उत्पादित वस्तुएँ, तथा सेवाएँ खरीदते हैं।
- कर इस बात की कोई गारन्टी नहीं देता कि उस भुगतान के बदले में कोई लाभ (benefit) भी प्राप्त होगा कि नहीं, और यदि होगा तो उसकी मात्रा (amount) तथा प्रकृति (nature) क्या होगी, किन्तु कीमतें वस्तुओं तथा सेवाओं के बदले में की जाने वाली प्रत्यक्ष अदायगियाँ हैं और उन अदायगियों (Payments) की मात्रा खरीदी गई वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा पर निर्भर होती है।
- जिन प्राप्तियों (receipts) को प्रशासनिक आय की श्रेणी में रखा जाता है, वे हैं–शुल्क या फीस, लाइसेंस, जुर्माने, सम्पत्ति जब्त करने और उत्तराधिकारी के अभाव में सम्पत्ति पर अधिकार करने आदि से होने वाली प्राप्तियाँ तथा विशेष कर-निर्धारण (Special assessments)।

नोट

- विशेष कर-निर्धारण या विशेष उगाही (special assessment) उस अनिवार्य अंशदान को कहते हैं जो प्रदान किये जाने वाले विशेष लाभों के अनुपात में वसूल किया जाता है और जिसका उद्देश्य लोकहित की दृष्टि से अधिकार में ली गई सम्पत्ति में विशेष सुधार करने की लागत अदा करना होता है।
- उपहारों तथा अनुदानों के रूप में होने वाली प्राप्तियों की विशेषता यही है कि ये ऐच्छिक प्रकृति की होती हैं और इनको देने वाला व्यक्ति बदले में किसी भी प्रत्यक्ष लाभ की आशा नहीं करता।

3.6 शब्दकोश (Keywords)

- भूमि कर (Land tax)–भूमि के लिए दिया जाने वाला कर।
- लागत (Cost)–व्यय।
- कानूनी (Legal)–कानून से संबद्ध।
- बेश (Surplus)–अधिकता।

3.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सरकारी प्राप्तियों का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है?
2. लोक आगम के विभिन्न स्रोतों का संक्षेप में वर्णन करें।
3. कर की विशेषताओं का उल्लेख करें।
4. प्रशासनिक आय से आप क्या समझते हैं?
5. फीस तथा कीमत में क्या अंतर है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. सार्वजनिक	2. उत्पादन	3. उपभोग	4. अन्य सभी स्रोतों की आय
5. लोक आगम	6. सत्य	7. असत्य	8. सत्य
9. असत्य	10. सत्य।		

नोट

Unit 4: कर भार (Burden of Taxes)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

4.1 कराधान का विकास (The Development of Taxation)

4.2 एडम स्मिथ के कराधान सिद्धान्त (Adam Smith's Canons of Taxation)

4.3 एडम स्मिथ के सिद्धांत की आलोचना (Criticism of Adam Smith's Canons)

4.4 कराधान के अन्य सिद्धांत (Other Principles of Taxation)

4.5 कराघात अथवा कर का दबाव (Impact of Tax)

4.6 कर का विवर्तन (Shifting of Tax)

4.7 कर का भार अथवा करापात (Incidence of a Tax)

4.8 कर-विवर्तन अथवा करापात के सिद्धान्त (Theories of Shifting of Taxes or Incidence of Taxes)

4.9 कर भार अथवा कर-विवर्तन को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Determining Incidence or Shifting of Tax)

4.10 कर भार की समस्या के अध्ययन का महत्त्व (Importance of Incidence Problem Study)

4.11 कुछ मुख्य करों के भार का अध्ययन (Study of the Incidence of Some Important Taxes)

4.12 सारांश (Summary)

4.13 शब्दकोश (Keywords)

4.14 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- कराधान के विकास संबंधी बातों को जानने में।
- कराधान के विभिन्न सिद्धांतों को समझने में।

नोट

प्रस्तावना (Introduction)

वर्तमान समय में सरकार के कार्यों में वृद्धि होने के साथ ही साथ सरकारी खर्च में भी निरन्तर वृद्धि हो रही है। आजकल प्रत्येक सरकार के सामने एक महत्त्वपूर्ण समस्या यह होती है कि वह अपने खर्चों की वित्तीय व्यवस्था के लिए पर्याप्त मात्रा में आय कैसे प्राप्त करें। सरकार अस्थायी रूप से तो उधार द्वारा भी आय प्राप्त कर सकती है, परन्तु कुछ समय बाद तो उन्हें भी वापिस ही करनी होती है। कुछ सरकारी आय सरकारी उद्यमों, प्रशासनिक एवं न्यायिक कार्यों तथा ऐसे ही अन्य स्त्रोतों से भी प्राप्त की जाती है, परन्तु सरकारी आय का एक बड़ा भाग कराधान (taxation) से ही प्राप्त होता है।

4.1 कराधान का विकास (The Development of Taxation)

प्राचीन समुदायों में लोग सरकार की सहायता के लिए अपनी ऐच्छिक सेवाएँ दिया करते थे। किन्तु राज्य के उदय के साथ-साथ ही सरकार के संचालन के लिए कर या उपहार तथा खानों व अन्य उद्यमों की आय प्राप्त की जाने लगी। प्राचीन राज्य सम्पत्ति कर, आय कर, वस्तु कर तथा उत्तराधिकार करों का संग्रह कभी-कभी ही करते थे और वह भी थोड़ी मात्रा में और केवल संकटकालीन आय के रूप में। प्राचीन राज्यों को लघु व्यय के लिए कराधान की किसी विस्तृत पद्धति की आवश्यकता नहीं होती थी।

यदि आधुनिक राज्यों की कर-पद्धतियों के उद्‌गम का लगाना है तो, जैसे कि **प्लेन** (च्समीद) ने कहा है, वह प्राचीन राजकोषीय व्यवस्था की बजाय सामन्तवादी व्यवस्था (मिनकंस`लेजमउ) में अधिक अच्छी तरह ढूंढ़ा जा सकता है। रोम के पतन के बाद काफी लम्बे समय तक शासक (तनसमते) अपने खर्चों की पूर्ति अपनी स्वयं की भूमि की आय से तथा अपनी प्रजा के अनिवार्य अंशदानों से किया करते थे उस समय सामन्तवादी बाजारों के शुल्क, सुरक्षा के शुल्क, सड़कों पुछों व घाटों के उपयोग का शुल्क, भूमि के किराये आदि की अदायगियाँ, जो कि वस्तुओं और सेवाओं के रूप में की जाती थीं, धीरे-धीरे मौद्रिक अदायगियों (उवदमल चंलउमदजे) में बदल गईं और आगे चलकर जब मौद्रिक अर्थव्यवस्था (उवदमल मबवदवउल) नें जन्म लिया तो इन्हीं अदायगियों ने करों (जंगमे) का रूप धारण कर लिया।

दस्तकारी के युग में जैसे-जैसे नई-नई वस्तुएँ बनने लगीं और नये-नये प्रकार के उद्योग स्थापित होने लगे, वैसे-वैसे ही व्यक्तिगत पदार्थों पर भूमि-कर, उत्पादन-कर, सीमा शुल्क, बाजार कर, पथ कर तथा अन्य कर लगाये जाने लगे। यह बात स्मरणीय है कि प्राचीन देय राशियों का करों के रूप में परिवर्तन एकदम नहीं, बल्कि क्रमिक रूप से शनै-शनैः हुआ।

सन् 1500 के पश्चात् जब आधुनिक राज्य का उदय हुआ, तो शनैः शनैः कराधान (ज्गंजपवद) ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। सरकारी खर्च की वृद्धि के साथ ही आय के नये-नये स्त्रोत ढूँढ़ने आवश्यक हो गये और वे ढूँढ़े गये नई-नई सम्पत्तियों पर, नई-नई व्यावसायिक क्रियाओं पर तथा उपभोग की नई-नई वस्तुओं पर कर लगाकर 19वीं और 20वीं शताब्दी में आय कर तथा उत्तराधिकार कर का महत्त्व बढ़ा। प्रथम विश्वयुद्ध तो अपने साथ मानो भारी खर्चों की बाढ़ ही ले आया जिसकी पूर्ति के लिए भारी कष्टदायी कराधान की व्यवस्था की गई। युद्ध में फंसे राष्ट्रों ने अपने पुराने करों को चरम सीमा तक बढ़ा दिया और नये-नये सामान्य बिक्री कर तथा अनावर्ती पूँजी कर (बंचपजंस समअपमे) लागू कर दिये। युद्धकाल के बाद का समय तो ऊँचे कराधान दृष्टि से और भी उल्लेखनीय रहा। सन् 1929 के अन्त में आरम्भ होने वाली और लम्बी अवधि तक खिंचने वाली मन्दी (कमचतमेपवद) ने कुछ प्रचलित करों की उपयोगिता को समाप्त कर दिया और सामाजिक सहायता पर सरकारी व्यय में होने वाली वृद्धि ने नये-नये करों की माँग उत्पन्न कर दी। पर इसके बावजूद, मन्दी अवधि में कराधान सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए कोई अधिक लाभकारी सिद्ध नहीं हुआ। आजकल तो बदलती हुई आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक दशाओं के कारण पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में राजकोषीय कार्यवाहियाँ ही सहायक होती हैं। अतः इस बात को समझना बहुत आवश्यक है कि एक अच्छी कर पद्धति के निर्धारक तत्व क्या हैं, जिससे कि वह पद्धति विभिन्न परिस्थितियों में अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा कर सके।

नोट

अत: इस प्रश्न पर जब सम्पूर्ण रूप में एवं व्यापक दृष्टिकोण से विचार किया जाता है तो प्रश्न उठता है कि अच्छी कर-पद्धति में कौन-कौन-सी विशेषताएँ होनी चाहिए। सर्वप्रथम तो, उसमें अच्छे करों का समावेश होना चाहिए क्योंकि करों से ही कर-पद्धति का निर्माण होता है। **एडम स्मिथ** सम्भवत: सबसे पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने कराधान के सिद्धान्तों का अथवा कराधान के नियमों का प्रतिपादन किया। तत्पश्चात् अन्य अर्थशास्त्रियों जिनमें **फिण्डले शिराज, बेस्टेबिल** प्रमुख हैं, ने करारोपण के अन्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

4.2 एडम स्मिथ के कराधान सिद्धान्त (Adam Smith's Canons of Taxation)

एडम स्मिथ द्वारा प्रस्तुत कराधान के सिद्धान्त या नियम निम्नलिखित हैं–

4.2.1 समानता का सिद्धान्त (The Canon of Equality)

समानता या समन्याय का सिद्धान्त (Canon of equality or equity) एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित सबसे पहला सिद्धान्त है। इसके अनुसार, "प्रत्येक राज्य के नागरिकों को यथासम्भव अपनी-अपनी योग्यता के अनुपात में सरकार की सहायता के लिए अंशदान करना चाहिए, अर्थात् उस आय के अनुपात में जिसका आनन्द वे राज्य के संरक्षण में प्राप्त करते हैं...। इस सिद्धान्त का अनुकरण करने से कराधान की समानता प्राप्त की जा सकती है और इसकी उपेक्षा करने से कराधान की असमानता यह सिद्धान्त यह स्पष्ट बताता है कि सरकार को अपने व्यय की पूर्ति के लिए प्रत्येक नागरिक से उसकी योग्यतानुसार कर वसूल करना चाहिए।"

क्या आप जानते हैं समानता के सिद्धांत को समन्याय का सिद्धांत भी कहते हैं।

आलोचना (Criticism)–इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति राज्य की सुरक्षा में जो आय प्राप्त करता है, उस पर अनुपाती दरों से कर लगाया जाना चाहिए। यद्यपि एक स्थान पर स्मिथ ने यह भी कहा कि धनी लोगों को अपने धन के अनुपात में नहीं बल्कि उससे भी अधिक कर अदा करना चाहिए, जिसका अर्थ है आरोही कराधान (progressive taxation)। किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री एडम स्मिथ की इस बात से सहमत नहीं हैं कि अनुपात कर (proportional taxes) समन्यायपूर्ण होते हैं। अत: समानता के सिद्धान्त को लागू करने के लिए उन्होंने आरोही कराधान की वकालत की। इस प्रकार आधुनिक अर्थशास्त्रियों का एडम स्मिथ के कराधान के साधनों अर्थात् कराधान की दरों के बारे में ही मतभेद है, कराधान के लक्ष्यों के बारे में नहीं।

4.2.2 निश्चितता का सिद्धान्त (Canon of Certainty)

एडम स्मिथ का दूसरा सिद्धान्त निश्चितता का सिद्धान्त है। इसके अनुसार, "प्रत्येक व्यक्ति को जो कर देता है, वह निश्चित होना चाहिए, मनमाना नहीं। कर के भुगतान का समय, भुगतान की विधि तथा भुगतान की राशि आदि करदाता तथा प्रत्येक अन्य व्यक्ति को स्पष्ट होनी चाहिए। कर के मामले में, किसी व्यक्ति को जो रकम अदा करती है उसकी निश्चितता (certainty) इतने महत्त्व की बात है कि समस्त देशों के अनुभव के आधार पर मेरा विचार है कि काफी मात्रा की असमानता भी इतनी भयानक नहीं है जितनी कि बहुत थोड़ी मात्रा की अनिश्चितता।"

हैडले ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। उसका कहना है कि इससे व्यक्ति तथा सरकार दोनों को लाभ है क्योंकि व्यक्ति को अनिश्चितता रहती है कि उसे कितना कर और किस समय देना है। इसके विपरीत सरकार को अपने बजट संतुलित करने में सहायता मिलती है।

आलोचना (Criticism)–यह कहा जाता है कि कर का भुगतान अनिवार्य होता है अत: वह एक प्रकार से निश्चित-सा ही होता है। इस स्थिति में इस सिद्धान्त का कोई महत्त्व नहीं है। परन्तु यह बात सैद्धान्तिक रूप से ही सत्य हो सकती है। जहाँ तक व्यवहार का प्रश्न है, इस सिद्धान्त की उपयोगिता किसी प्रकार भी कम नहीं होती। उदाहरण के लिए, आयकर का भुगतान, भुगतान की दर तथा भुगतान का समय आदि सभी बातें करदाताओं व

नोट

कर-अधिकारियों को अच्छी तरह मालूम होती हैं परन्तु फिर भी उनके बीच विवाद उत्पन्न होते हैं और वे अदालतों में जाते हैं। ऐसे अनेक मामले देखने को मिलते हैं जिनमें कर-अधिकारियों द्वारा करदाताओं को परेशान किया जाता है। वास्तव में बात यह है कि कर का निर्धारण करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और निश्चितता के सिद्धान्त का उद्देश्य इन्हीं कठिनाइयों को दूर करना है ताकि सरकार को प्राप्त होने वाली आय निश्चित हो जाए।

4.2.3 सुविधा का सिद्धान्त (Canon of Convenience)

एडम स्मिथ का तीसरा सिद्धान्त सुविधा का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार, "प्रत्येक कर ऐसे समय तथा ऐसी रीति से वसूल किया जाना चाहिए कि उसको अदा करना करदाता के लिए सबसे अधिक सुविधाजनक हो।" इसका अर्थ है कि कर ऐसे तरीके से लगाया जाना चाहिए और ऐसे समय लगाया जाना चाहिए जबकि करदाता उसका अत्यन्त सुविधा के साथ भुगतान कर सके। उदाहरण के लिए, भू-राजस्व या मालगुजारी (land revenue) को वसूल करने का सर्वोत्तम समय वह होता है जबकि फसल काटी जाती है। इसी प्रकार, मकानों के किराये पर लगाया जाने वाला कर उस समय वसूल किया जाना चाहिए जबकि करदाता को उसे देने में सबसे अधिक सुविधा हो। परोक्ष कर इतने सुविधाजनक होते हैं कि व्यक्ति कर के भुगतान की तुलना में वस्तुओं की कीमतों के रूप में अधिक सुविधाजनक मानते हैं। उपयोगी वस्तुओं की तुलना में विलासिताओं की वस्तुओं पर लगाये गये कर अधिक सुविधाजनक होते हैं।

आलोचना (Criticism)–स्मिथ ने उन करों का भी कारणों सहित उल्लेख किया जिनको कि बड़ी सुविधा के साथ एकत्र किया जा सकता है। यह हैं विलासिता की वस्तुओं पर कर। "उपभोगी वस्तुओं (consumable goods) जैसे कि विलासिता की व ऐश की वस्तुओं पर लगाये गये कर बहुत सुविधापूर्ण होते हैं क्योंकि उपभोक्ताओं को जिस रूप में उन्हें देना पडता है वह बहुत सुविधाजनक होता है।" इन करों का भुगतान उपभोक्ता के लिए सुधिाजनक होता है क्योंकि वह धीरे-धीरे जब-जब वस्तुएँ खरीदता है तो वैसे-वैसे ही वह थोड़ा-थोड़ा कर अदा करता रहता है और वह जब चाहता है तभी अदा करता है, क्योंकि उन वस्तुओं को सर्वाधिक सुविधाजनक समय पर खरीदना या बिल्कुल न खरीदना उसकी इच्छा पर निर्भर होता है।

4.2.4 मितव्ययिता का सिद्धान्त (Canon of Economy)

स्मिथ का चौथा और अन्तिम सिद्धान्त है मितव्ययिता या किफायत का सिद्धान्त। इसके अनुसार, "प्रत्येक कर इस प्रकार लगाया तथा वसूल किया जाना चाहिए कि उसके द्वारा राज्य के कोष में जितना धन आये, लोगों की जेब से उसके अलावा फालतू धन कम से कम मात्रा में निकले।" इस सिद्धान्त का उद्देश्य है कि कर-वसूली की प्रशासनिक लागत कम से कम रखी जाये, अर्थात् लोगों की जेब से बाहर आने वाले धन तथा राजकोष में जमा किये जाने वाले धन में कम से कम अन्तर हो। एडम स्मिथ ने यह भी कहा कि जनता द्वारा दिये जाने वाले कर का सहकारी कोष से आने वाली रकम में आधिक्य निम्नलिखित चार दशाओं में हो सकता है–

(*i*) **सर्वप्रथम,** कर लगाने तथा वसूल करने के लिए भारी संख्या में अधिकारियों की जरूरत पड़ सकती है; जिनका वेतन ही इतना होगा कि कर के रूप में प्राप्त धनराशि का काफी बड़ा भाग तो उसमें तो खर्च हो जायेगा और फिर राज्य-कार्य के लिए करदाताओं को पहले से अधिक कर देना पड़ेगा। अत: यह आवश्यक है कि कर वसूल करने की प्रशासनिक लागत कम से कम होनी चाहिए।

(*ii*) **दूसरे,** कर लोगों के उद्योग व व्यापार में बाधा डाल सकते हैं और लोगों को व्यवसाय की कुछ ऐसी शाखाएँ चालू करने के विषय में हतोत्साहित कर सकते हैं जो बहुसंख्यक लोगों के लिए जीविका तथा निर्वाह का साधन बन सकती थीं।

(*iii*) **तीसरे,** कुछ दुर्भाग्यशाली व्यक्ति करों से बचने का असफल प्रयास करते हैं और पकड़े जाने पर जब उन पर जुर्माना होता है अथवा उनकी सम्पत्ति आदि जब्त की जाती है तो उससे उनका व्यापार भी चौपट हो जाता है और ऐसा होने से समुदाय को उस व्यवसाय से मिलने वाले लाभ भी समाप्त हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त, एक अविवेकी

नोट

कर अधिकारी करों की चोरी व तस्करी के लिए स्वयं ही एक बड़ा आकर्षण बना रहता है। अत: कर इतने भारी नहीं होने चाहिए कि उससे करों को छिपाने का प्रलोभन मिले और करदाता पर अनावश्यक अतिरिक्त बोझ पड़े।

(*iv*) **चौथे,** कर अधिकारियों के बार-बार के दौरों से तथा खातों आदि की अनावश्यक जाँच-पड़ताल से भी करदाताओं पर अनावश्यक परेशानी, घबराहट तथा दबाव पड़ सकता है। अत: कर-पद्धति बहुत सरल होनी चाहिए ताकि वह कर अधिकारियों द्वारा परेशानी तथा उत्तेजना पैदा करने का कारण न बने।

टास्क सुविधा के सिद्धांत को स्पष्ट करें।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. प्राचीन समुदायों में लोग सरकार की सहायता के लिए अपनी ..... सेवाएँ दिया करते थे।
2. सन् ..... के पश्चात् आधुनिक राज्य का उदय हुआ।
3. ..... संभवत: सबसे पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने कराधान के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।
4. ..... ने निश्चितता के सिद्धांत का समर्थन किया।
5. कर वसूल करने की ..... लागत कम से कम होनी चाहिए।

4.3 एडम स्मिथ के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Adam Smith's Canons)

एडम स्मिथ के करारोपण के सिद्धान्तों के अध्ययन के उपरान्त यह ज्ञात होता है कि समानता के सिद्धान्त को छोड़कर अन्य सभी सिद्धान्त कर-नीति का कोई निश्चित आधार निर्मित नहीं करते। इन्हें सिद्धान्त न कहकर कर-अधिकारियों के प्रशासन सम्बन्धी निर्देश कह सकते हैं।

समानता अथवा न्यायशीलता का सिद्धान्त भी करदेय क्षमता की कोई निश्चित माप नहीं बतलाता।

एडम स्मिथ के सिद्धान्तों के उपर्युक्त दोष होने पर भी अर्थशास्त्रियों ने इन सिद्धान्तों को करारोपण के लिए पर्याप्त महत्त्वपूर्ण माना है। प्रोफेसर शिराज के मतानुसार, **एडम स्मिथ** के पश्चात् **"कोई भी विद्वान करों के नियमों को इतने सरल तथा स्पष्ट रूप में नहीं रख सका जैसा कि एडम स्मिथ ने।"**

प्रो. बी. आर. मिश्रा के शब्दों में–**"योग्यता का नियम करारोपण का एक सिद्धान्त है, अन्य तीन करों से सम्बन्धित प्रशासकीय नियम हैं।"**

4.4 कराधान के अन्य सिद्धान्त (Other Principles of Taxation)

बेस्टेबिल जैसे कई लेखकों ने एडम स्मिथ के अलावा कुछ अन्य सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया है। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

4.4.1 उत्पादकता का सिद्धान्त (Canon of Productivity)

बेस्टेबिल (Bastable) ने अपने कराधान के सिद्धान्तों को महत्त्व के क्रम में रखा। इस क्रम में उन्होंने सबसे पहला स्थान उत्पादकता अथवा उत्पादिता के सिद्धान्त को दिया। अन्य शब्दों में, "सर्वप्रथम कराधान को उत्पादक होना चाहिए।" स्पष्ट है कि बेस्टेबिल ने कर की उत्पादकता को सर्वोच्च महत्त्व प्रदान किया। कर की उत्पादकता दो प्रकार से प्राप्त की जा सकती है। **सर्वप्रथम,** कर ऐसी होना चाहिए जो सरकार के संचालन के लिए यथेष्ट मात्रा में धन दे सके। **बेस्टेबिल** के शब्दों में, "राजस्व व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य राज्य के खर्चों के लिए आय प्राप्त करना होता है, अत: वित्त मन्त्री स्वभावत: ही कर द्वारा प्राप्त होने वाली रकम से ही उसके गुणों का अनुमान लगाता है।" **दूसरे,** कर ऐसा होना चाहिए जो अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन, दोनों ही दृष्टिकोणों से न तो उत्पादन को हतोत्साहित करे और न उसमें बाधा डालें।

नोट

4.4.2 लोच का सिद्धान्त (Canon of Elasticity)

कर-प्रणाली में लोच का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। बेस्टेबिल ने लोच के सिद्धान्त को काफी महत्त्वपूर्ण बतलाया। उन्होंने कहा कि कर ऐसे होने चाहिए कि सरकार की आवश्यकताओं के अनुसार उनमें घटा-बढ़ी की जा सके। सरकार को अकाल या बाढ़ का सामना करने के लिए तथा युद्ध, विकास कार्यों एवं अन्य सम्भावित कारणों के लिए अधिक धन की आवश्यकता हो सकती है। इस स्थिति में सरकार के साधनों में तेजी से वृद्धि केवल तभी की जा सकती है जबकि उसकी कर पद्धति लोचदार (elastic) हो। उदाहरण के लिए, सम्पत्ति तथा वस्तुओं पर लगाये जाने वाले कर उतने लोचदार नहीं होते, जितना कि आय-कर होता है।

4.4.3 विविधता का सिद्धान्त (Canon of Diversity)

एक कर-पद्धति (single tax system) तथा बहु कर-पद्धति (multiple tax system) में तुलनात्मक लाभों के बारे में पहले से ही काफी विवाद बना रहा है। एक-कर लगाने के सम्बन्ध में विचारकों द्वारा समय-समय पर अनेक प्रस्ताव किये जाते रहे हैं। उदाहरण के लिए फिजियोक्रेट्स (physiocrates) ने भूमि के आर्थिक लगान पर ही एक-कर लगाने का सुझाव दिया। इसी प्रकार, केवल आय पर ही एक-कर लगाने के सम्बन्ध में अनेक तर्क दिये जाते हैं। **एक-कर में अनेक कमियाँ पाई जाती है–**(*i*) हो सकता है कि चह पर्याप्त आय न प्रदान करे, (*ii*) हो सकता है कि इसके द्वारा कराधान के भार का वितरण सन्तोषजनक न हो, (*iii*) इसको वसूल करना कठिन तथा खर्चीला हो सकता है, (*iv*) इसमें कर से बचने का प्रलोभन भी काफी हो सकता है।

इसके विपरीत **बहु-विध कराधान** (multiple taxation) में इन सब दोषों के पाये जाने की बहुत कम सम्भावना है। जहाँ तक तर्कों का प्रश्न है, तराजू का पलड़ा एक-कर के विरुद्ध जाता है। इसी कारण कुछ लेखकों ने कराधान की अनेकता या विविधता पर भारी जोर दिया ।

करों की अनेकता का अर्थ कि प्रत्यक्ष, तथा परोक्ष अनेक प्रकार के कर होने चाहिएँ ताकि नागरिकों का प्रत्येक वर्ग राज्य की आय में अपना योगदान कर सके। एक-कर पद्धति की तुलना में सामान्यत: बहु-कर पद्धति को प्रमुखता दी जाती है। परन्तु करों में अत्यधिक विविधता (multiplicity) का होना भी उचित नहीं माना जाता, क्योंकि अत्यधिक विविधता मितव्ययिता तथा उत्पादकता के सिद्धान्तों के विरुद्ध पड़ती है। यदि करों की संख्या बहुत अधिक हुई तो उसका परिणाम यह होगा कि उनमें प्रत्येक कर थोड़ी-थोड़ी ही आय प्रदान करेगा जिससे उनके संग्रह की लागत बढ़ जायेगी।

डाल्टन का सुझाव था कि बहुत अधिक की बजाय थोड़े से ठोस करों पर ही निर्भर रहा जाये। "यह अच्छा होगा कि सरकारी आय के अधिकाँश भाग के लिए थोड़े से करों पर ही निर्भर रहा जाये।" डाल्टन का विचार था कि यदि बहुत अधिक मात्रा में कर लगाये गये तो प्रशासनिक व्यवस्था की कार्यकुशलता नष्ट हो जायेगी। अत: प्रशासन की कार्यकुशलता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि कर सीमित मात्रा में लगाये जाएँ किन्तु प्रो. आर्थर यंग का कहना है कि, "यदि मुझसे एक अच्छी कर-पद्धति की व्याख्या करने को कहा जाये तो मैं कहूँगा कि अच्छी कर-पद्धति वह है जो लोगों की अपरिमित संख्या पर बहुत हल्का दबाव डाले और भारी दबाव किसी पर भी नहीं।" परन्तु यह ध्यान रहे कि ऐसे करों के अवरोही प्रभाव (regressive effects) न पड़ें।

इस प्रकार, उचित यह है कि कराधान के भार को सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर विस्तृत रूप से फैला दिया जाये, ताकि उसके किसी एक भाग को अधिक क्षति न पहुँचे। अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि एक अच्छी कर-पद्धति बहुविध कराधान (multiple taxation) के सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिए, किन्तु ऐसा करने में उत्पादक तथा मितव्ययिता के प्रयासों को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे।

क्या आप जानते हैं अच्छी कर-पद्धति वह है जो लोगों की अपरिचित संख्या पर बहुत हल्का दबाव डाले और भारी दबाव किसी पर भी नहीं।

4.4.4 सरलता का सिद्धान्त (Canon of Simplicity)

कर ऐसा होना चाहिए कि करदाता उसे सरलता से समझ सके। दूसरे शब्दों में, कर की प्रकृति उसका उद्देश्य, भुगतान का समय, कर-निर्धारण का तरीका तथा आधार आदि सभी ऐसे होने चाहिएँ कि प्रत्येक करदाता उनको आसानी से

नोट

समझ सके तथा उनका पालन कर सके। स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त करदाता की अनेक कठिनाइयों को दूर करता है परन्तु आधुनिक कर-व्यवस्था में, जिनकी प्रकृति काफी जटिल हो गई है, इस सिद्धान्त का पालन करना कठिन है। तथापि यह कहा जा सकता है कि प्रशासनिक कार्य-कुशलता (administrative efficiency) अच्छी कर-पद्धति का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्व है और वह कुशलता आसानी से तभी लाई ला सकती है जबकि कर-पद्धति काफी सरल हो। जब कर-पद्धति होगी और उसे समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी तो करदाता को हिसाब-किताब सम्बन्धी या प्रशासनिक अथवा अन्य किसी प्रकार की कठिनाई का भी सामना नहीं करना पड़ेगा। फलस्वरूप, सरकार के लिए कर-आय की वसूली भी आसान हो जायेगी। अत: कराधान के इस सिद्धान्त को अपनाने से ही कर-पद्धति की कुशलता बढ़ाई जा सकती है।

4.4.5 वांछनीयता का सिद्धान्त (Canon of Expediency)

इसका अभिप्राय यह है कि सरकार को केवल वे ही कर लगाने चाहिए जो उचित व वांछनीय हों। इस दृष्टि से सरकार जब भी कोई नया कर लगाये या पुराने करों में वृद्धि करे तो यह देखा जाना चाहिए कि करदाताओं पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि कोई कर वाँछनीय भी है और उसमें एक अच्छे कर की अधिकांश विशेषताएँ भी पाई जाती हैं परन्तु सरकार उस कर को लगाना समयानुकूल न माने। उदाहरण के लिए, भारत में एक आरोही कृषि आयकर को अत्यन्त वाँछनीय माना जाता है परन्तु इसे आज तक उस रूप में लागू नहीं किया गया जिस रूप में लागू किया जाना चाहिए। अत: लोकतन्त्रीय देशों में, जहाँ कि जनता की इच्छाओं का आदर किया जाता है, इस सिद्धान्त को बड़ा महत्त्व प्रदान किया जाता है।

4.4.6 समन्वय का सिद्धान्त (Canon of Co-ordination)

लोकतन्त्रीय देशों में केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सरकारों द्वारा लगाये जाते हैं। अत: यह वाँछनीय है कि विभिन्न सरकारों द्वारा लगाये जाने वाले करों के बीच समन्वय बना रहे। करदाता और सरकार दोनों के ही हितों की दृष्टि से ऐसा होना अत्यन्त आवश्यक है, विशेष रूप से लोकतन्त्रीय देशों में।

4.4.7 उपभोक्ता बचत का सिद्धान्त (Canon of Consumer Surplus)

मार्शल के अनुसार सरकार को कर लगाते समय निम्नलिखित दो तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए–(*i*) कर उन्हीं वस्तुओं पर लगाया जाना चाहिए जिनसे उपभोक्ताओं को बचत प्राप्त हो रही हो ताकि उन वस्तुओं पर कर लगाने के पश्चात् भी उपभोक्ताओं का आकर्षण बना रहे। (*ii*) सरकार को उन्हीं वस्तुओं पर कर लगाना चाहिए जिन पर कर के कारण से उपभोक्ता बचत के त्याग से अधिक सरकार को आय प्राप्त हो तभी अधिकतम कल्याण प्राप्त होगा। इस तथ्य को संलग्न चित्र से आसानी से स्पष्ट किया जा सकता है–

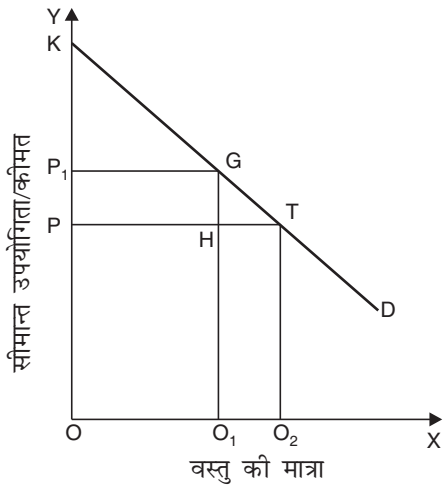

नोट

मान लीजिये D सीमान्त उपयोगिता वक्र है। कर लगाने से पूर्व करदाता वस्तु की OP कीमत पर OQ मात्रा प्राप्त करता है। मान लीजिये प्रति इकाई कर लगाया जाता तो कीमत ठीक कर की मात्रा के बराबर अर्थात् OQ_1 हो जाती है तथा मात्रा घटकर OQ_1 हो जाती है। इस स्थिति में कर से प्राप्त आय $GHPP_1$ है जो कर की मात्रा तथा वस्तु की मात्रा का गुणनफल है। इस स्थिति में उपभोक्ता की आय $GPPT_1$ है। अत: विशुद्ध हानि GHT है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कर इस इस प्रकार से लगाये जाने चाहिए जिससे कम से कम उपभोक्ता बचत की हानि हो।

टास्क उपभोक्ता बचत के सिद्धांत को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट करें।

कर के तीन पहलू (Three Aspects of Tax)

एडम स्मिथ के सिद्धान्त पर टिप्पणी करते हुए, सर जोशिया स्टाम्प (Sir Josiah Stamp) ने करों का विश्लेषण तीन दृष्टिकोण से किया है–

(*i*) कराधान के प्रश्नों पर करदाता के दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए ।

(*ii*) उन पर सरकार के दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए, और

(*iii*) उन पर उत्पादक इकाई या आर्थिक समाज के रूप में सम्पूर्ण समुदाय के दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए ।

इस सम्बन्ध में **प्रो. केनन** ने ठीक कहा है कि ये कोई मौलिक सिद्धान्त (fundamental principle) नहीं हैं बल्कि केवल इस बात को कहने का का दूसरा तरीका है कि समानता, उत्पादकता तथा मितव्ययिता कराधान के आधारभूत सिद्धान्त हैं।

अनेक आधुनिक लेखकों ने, जिनमें **गर्नियर** (Garnier), **रोस्चर** (Roscher) तथा **रिक्का सालेरनो** (Ricca Salerno) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं, इस बात का प्रयास किया है कि अच्छी कर पद्धति की विशेषताओं के सम्बन्ध में कुछ नियम बनाये जायें। इस सम्बन्ध में प्रो. शिराज का यह कहना ठीक ही है कि "कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति अब तक कराधान के सिद्धान्तों को इनसे स्पष्ट और सरल नियमों के रूप में रखने में उतना सफल नहीं हुआ जितना कि एडम स्मिथ। उसके तीव्र और विशाल मस्तिष्क ने अपने से पूर्व की सभी जाँच एवं खोजों को बिल्कुल ही नया रूप दे दिया और उसके उत्तराधिकारियों ने उस सिद्धान्तों में न तो कोई अधिक सुधार ही किया और न ही उन्होंने, लोक वित्त में उन सिद्धान्तों को जो स्थान प्राप्त था, उससे कोई ऊँचा स्थान दिलाया।"

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि बाद के लेखकों ने इस दिशा में जो योगदान किया उसका कोई महत्त्व ही नहीं है। **बेस्टेबिल** तथा अन्य लेखकों ने कराधान के जिस सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है उन्हें भी एक अच्छी कर पद्धति के महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्वों में गिना जाता है।

यह बात जरूर है कि जब कभी यह पाया जाये कि इन सिद्धान्तों में परस्पर टकराव हो रहा है तो उस स्थिति में कम महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त के मुकाबले सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त को ही काम में लाया जाये। उदाहरण के लिए, समानता व सुविधा के मुकाबले उत्पादकता का सिद्धान्त अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए। इसी प्रकार, अधिक मात्रा की मितव्ययिता को कम मात्रा की समानता के मुकाबले अधिक महत्त्व प्रदान किया जाना चाहिए अथवा अधिक मात्रा की समानता को कम मात्रा की मितव्ययिता के मुकाबले अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। राज्यों के प्रशासन को सफल बनाना कर-पद्धति कर मुख्य उद्देश्य होता है, यदि कम मात्रा की समानता एवं सुविधा को उत्पादकता के लिए छोड़ दिया जाये तो ऐसा करना कोई अयुक्तिसंगत नहीं होगा।

4.4.8 एक अच्छी कर-प्रणाली की विशेषताएँ (Characteristics of a Good Tax System)

एक आदर्श कर प्रणाली वह होती है जो आवश्यकतानुसार सभी प्रकार के करों का समावेश कर लेती है। एडम स्मिथ से लेकर आधुनिक अर्थशास्त्रियों के करारोपण के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में जो विवेचना की गयी है उन सभी तथ्यों

नोट

से एक अच्छी कर प्रणाली की विशेषताओं का निर्माण होता है। प्रत्येक कर प्रणाली में कुछ गुण एवं कुछ दोष सम्भव होते हैं। इस सम्बन्ध में **लुट्स** का कहना है, "न तो कोई कर पूर्णतया अच्छा होता है और न ही पूर्णतया खराब होता है।" व्यवहार में कोई प्रणाली दोष मुक्त नहीं हो सकती। प्रसिद्ध दार्शनिक **एडमंड बर्क** का कहना उचित है, "कर लगाना व लोगों को प्रसन्न रखना उसी प्रकार कठिन है जिस प्रकार प्यार करना और बुद्धिमान बने रहना।" किसी समय विशेष में कोई कर-प्रणाली उचित हो सकती है और समय एवं परिस्थितियों के परिवर्तित होने पर अनुचित हो सकती है।

एक अच्छी कर-प्रणाली की क्या विशेषताएँ हों यह सरकारी व्यय की प्रकृति, सरकारी कार्यों के बारे में जनता की प्रतिक्रियाएँ राजकोषीय नीति, देश की आर्थिक दशा और राजनीतिक उद्देश्य आदि तत्त्वों पर निर्भर करता है। यही नहीं एक अच्छी कर प्रणाली की विशेषताएँ विकसित अर्थव्यवस्था में विकासशील अर्थव्यवस्था की तुलना में यह भिन्न होंगी।

श्रीमती हिक्स के मतानुसार एक अच्छी कर प्रणाली में निम्नलिखित गुण होने चाहिए–

(*i*) जनता पर जो करारोपण किया जाता है वह उनके भुगतान करने की योग्यता के उनुसार होना चाहिए। यह योग्यता उनकी आय एवं परिवाकि परिस्थितियों पर निर्भर करती है।

(*ii*) कर का उद्देश्य सार्वजनिक सेवाओं को वित्तीय व्यवस्थाओं के लिए निश्चित किया जाना चाहिए।

(*iii*) कर-प्रणाली सार्वभौमिकता पर आधारित होनी चाहिए।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि एक अच्छी कर-पद्धति वह है जिसमें कर को शनैः शनैः बढ़ाया जाए, किन्तु युद्ध जैसे संकटकाल के अवसरों पर भारी कर को व्यवहारिक माना जा सकता है। साधारण स्थिति में, भारी कराधान (heavy taxation) को, जो कि लोगों के आर्थिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, वाँछनीय नहीं माना जाता। तथापि, हमारा मत है कि प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों ही प्रकार के करों का आश्रय लिया जाना चाहिए, परन्तु कर-पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि उसके अवरोही अथवा प्रगति विरोधी प्रभाव न पड़ें।

एक अच्छी कर-प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए–

(1) कर सम्पूर्ण कर-पद्धति के ही अंग हैं (Taxes are Parts of the Tax-System)

सरकार के करों को, अच्छा है यह कहा जाये कि राज्य के करों को, एक एकीकृत अथवा संयुक्त कर-पद्धति के अंग के रूप में ही देखा जाना चाहिए, अपेक्षाकृत इसके कि उन्हें अनेक परस्पर असम्बन्धित करों के रूप में ही देखा जाए, प्रत्येक कर पर इस दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए कि कर-व्यवस्था में उसका समुचित स्थान क्या है। इसका निर्णय कर-व्यवस्था के अन्य करों से उसके लाभों व हानियों की तुलना करके लिया जा सकता है। उदाहरण के लिए, पृथक् रूप में कोई भी कर अच्छा या बुरा कैसा भी हो सकता है। परन्तु कर-पद्धति के एक अंग के रूप में उसकी स्थिति ठीक इससे उल्टी हो सकती है, क्योंकि कर-पद्धति के एक अंग के रूप में हो सकता है यह अन्य करों के बुरे प्रभावों को दूर कर दे अथवा अन्य करों के कुछ अवाँछनीय परिणामों को और भी बढ़ा दे। कोई कर-पद्धति में आवश्यक सन्तुलन भी स्थापित कर सकता है अथवा यह वर्तमान सन्तुलन को बिगाड़ भी सकता है। विधायकों एवं शासकों के समक्ष यह एक मुख्य समस्या विद्यमान रहती है कि सन्तुलित, एकीकृत तथा समरूप कर-पद्धति का निर्माण कैसे किया जाए और इस समस्या का समाधान केवल तभी हो सकता है जबकि कर-व्यवस्था के सम्पूर्ण ढांचे में विभिन्न करों का ताना-बाना ऐसे बुना जाए कि उससे कर-पद्धति में बहुरूपता (symmetry) आये और उसका विरोध कम से कम हो।

नोट

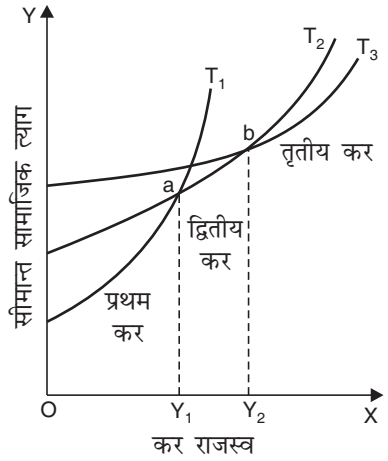

किसी एकपक्षीय करारोपण की तुलना में सरकार को करों से एक पूर्ण मिले-जुले रूप से अधिक आय प्राप्त होती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सरकार को अधिक राजस्व प्राप्त करने के लिए कर-पद्धति के आधार को अधिक व्यापक रूप प्रदान करना चाहिए। इस तथ्य को संलग्न रेखाचित्र की सहायता से आसानी से स्पष्ट किया जा सकता है। संलग्न चित्र में X-अक्ष पर कर राजस्व तथा Y-अक्ष पर सीमान्त सामाजिक त्याग दर्शाया गाया है। यहाँ यह दर्शाया गाया है कि प्रथम कर में सीमान्त सामाजिक त्याग, द्वितीय एवं तृतीय कर से कम है। सरकार सबसे पहले राजस्व प्राप्त करने के लिए प्रथम कर का सहारा लेगी। राजस्व प्राप्त कराने के लिए कर की मात्रा में वृद्धि करेगी किन्तु a बिन्दु के पश्चात् प्रथम कर का सीमान्त सामाजिक त्याग द्वितीय कर से अधिक हो जायेगा। इस स्थिति में सरकार अधिक राजस्व प्राप्त करने के लिए द्वितीय कर की सहारा लेगी। अधिक राजस्व प्राप्त कराने के लिए द्वितीय कर की मात्रा में वृद्धि की जायेगी किन्तु b बिन्दु के पश्चात् द्वितीय कर का सीमान्त सामाजिक त्याग तृतीय कर से अधिक होगा। ऐसी स्थिति में सरकार अधिक राजस्व प्राप्त करने के लिए तृतीय कर लगायेगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि सरकार को अधिक राजस्व प्राप्त कराने के लिए कर का व्यापक क्षेत्र ढूँढ़ना होगा।

आरोही आय-कर तथा उत्तराधिकार करों का उपयोग उच्च आय वाले वर्गों पर तथा उसके द्वारा प्रयुक्त वस्तुओं पर भारी बोझ डालने के लिए किया जा सकता है। ऐसे भी कर लगाये जा सकते हैं जो कि निम्न आय वाले वर्गों तक पहुँच सकें। कर कोई से भी लगाये जाएँ, परन्तु उनका चुनाव तक सुनियोजित सामाजिक नीति के अनुसार किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक बड़ी समस्या सदा यह बनी रही है कि कुल कर प्राप्तियों में सम्पत्ति-कर, वस्तु-कर, आय-कर तथा अन्य करों के अनुपात का पता कैसे लगाया जाए? अत: कर-पद्धति ऐसी होनी चाहिए जो इन सभी समस्याओं का उपयुक्त समाधान प्रस्तुत कर सके।

(2) अधिकतम सामाजिक लाभ (Maximum Social Benefit)

कराधान को सरकारी आय प्राप्त करने का ही साधन नहीं मान लेना चाहिए बल्कि कुछ ऐसे सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति का भी साधन माना जाना चाहिए जैसे कि धन का पुनर्वितरण कराना तथा आय की असमानताओं को कम करना। सरकारी सेवाओं की वित्तीय व्यवस्था करने के लिए भी कराधान का उपयोग किया जा सकता है। इसका उपयोग उपभोग को नियन्त्रित एवं नियमित करने के लिए भी किया जा सकता है; उदाहरण के लिए, भारी उत्पादन शुल्क लगाकर शराब तथा अन्य नशीले पदार्थों के उपभोग को सीमित करना। ऐसे उपायों से देश के सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है। इस प्रकार, अच्छी कर-पद्धति वह है जो देश को अधिकतम सामाजिक लाभ प्रदान करने के विषय में आश्वस्त करे तथा उसे केवल सरकारी आय प्राप्त करने का ही साधन न मान लिया जाए।

(3) करों के भार का न्यायपूर्ण वितरण (Just Distribution of Tax Burden)

अच्छी कर-पद्धति वह है जो कि करों के भार के न्यायपूर्ण वितरण के विषय में आश्वस्त करे। करों के भार के न्यायपूर्ण वितरण के सम्बन्ध में तीन सिद्धान्त मुख्यत: प्रचलित हैं–

(1) **लागत सिद्धान्त** (Cost Theory)–कराधान का माप सरकार द्वारा प्रत्येक करदाता को प्रदान की जाने वाली सेवा की लागत द्वारा किया जाना चाहिए,

नोट

(2) **लाभ सिद्धान्त** (Benefit Theory)–कराधान का माप प्रत्येक करदाता को ऐसी सेवा से प्राप्त होने वाले लाभ के आधार पर किया जाना चाहिए, और

(3) **सामर्थ्य सिद्धान्त** (Ability to pay Theory)–करों का निर्धारण प्रत्येक व्यक्ति की कर देने की सामर्थ्य के अनुसार किया जाना चाहिए।

लागत सिद्धान्त उन सेवाओं पर लागू नहीं किया जा सकता जिनका भुगतान कीमतों के रूप में नहीं, बल्कि अन्य प्रकार से किया जाता है। (जैसे कि पीछे करों की कीमतों तथा शुल्कों की परिभाषाओं में बताया गया है) करों की स्थिति में लागत का पता नहीं लगाया जा सकता। कर एक अनिवार्य अंशदान है जो कि सभी नागरिकों से लिया जाता है और इनमें यह नहीं देखा जाता कि सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवा का विभिन्न व्यक्तियों ने कितना-कितना उपयोग किया है। इस प्रकार लागत सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप में लागू नहीं किया जा सकता। चूँकि विभिन्न करदाताओं को प्रदान की जाने वाली सेवाओं की लागत का पता नहीं लगाया जा सकता, अत: वृद्धावस्था पेन्शन जैसे कुछ-एक मामलों को छोड़कर, सेवा से प्राप्त होने वाले लाभ का भी पता नहीं लगाया जा सकता। सेवा से प्राप्त होने वाले लाभ के सिद्धान्त के अनुसार तो पेन्शन पाने वाले व्यक्ति को अपनी सम्पूर्ण पेन्शन ही करों के रूप में सरकार को लौटानी होगी। यदि इस सिद्धान्त के कुछ अपवाद (exceptions) रखे जाते हैं, तो यह स्पष्ट नहीं है कि वे किस नियम के आधार पर तथा किस समय तक रखे जाने हैं। अन्त में शेष बचता है कर अदा करने की योगयता का सिद्धान्त या **सामर्थ्य सिद्धान्त**, जिसके सम्बन्ध में भी यद्यपि यह कठिनाई सामने आती है कि प्रत्येक करदाता की कर अदा करने की सामर्थ्य का अनुमान कैसे लगाया जाए, किन्तु फिर भी इस सिद्धान्त को अन्य सभी के मुकाबले श्रेष्ठ माना जाता है। वास्तव में, अच्छी कर-पद्धति वह है जो न्यूनतम कुल त्याग के विषय में आश्वस्त करे और जो समाज के निर्धन वर्ग के मुकाबले धनी वर्गों पर अधिक बोझ डाले। अत: एक अच्छी कर-पद्धति आरोहण (Progression) के सिद्धान्त पर आधारित होती है।

(4) करों का सार्वलौकिक रूप से लागू होना (Universal Application of Taxes)

यह ठीक ही है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही कर अदा करना चाहिए और जिन लोगों की कर देने की सामर्थ्य एक समान हो उन पर करों का बोझ भी एक-सा ही पड़ना चाहिए। किन्तु भारतीय कर-पद्धति में कुछ सीमा तक यह गुण नहीं पाया जाता। उदाहरण के लिए, भारत में आय-कर व्यापक तथा एक समान रूप में नहीं लगाया जाता क्योंकि कृषि से प्राप्त होने वाली आय पर उस सीमा तक कर नहीं लगाया जाता जितना कि गैर-कृषि क्षेत्रों की आय पर लगाया जाता है। इससे उन लोगों के मन में असन्तोष उत्पन्न होता है जो कि गैर-कृषि क्षेत्रों में लगे हैं। उससे अर्थव्यवस्था में असन्तुलन उत्पन्न होने का भी भय रहता है। अत: अच्छी कर-पद्धति तो वही है जो बिना किसी भेद-भाव के समाज के प्रत्येक व्यक्ति पर करों को व्यापक एवं एक समान रूप से लागू करे।

(5) राष्ट्रीय आय की वृद्धि के साथ ही सरकारी आय भी बढ़नी चाहिए (Revenues should Increase with the Increase in National Income)

कर-पद्धति का ढाँचा ऐसा होना चाहिए कि राष्टीय आय में जैसे-जैसे वृद्धि हो, वैसे-वैसे ही उसका अधिकाधिक अनुपात स्वयमेव सरकारी खजाने में आता रहे और उसका लेने के लिए सरकार को कोई अतिरिक्त कर न लगाना पड़े। इस दृष्टि से तो, कृषि आय पर अथवा भूमि के पूँजीगत मूल्य पर लगाये जाने वाले कर के मुकाबले, प्रति एकड़ भू-राजस्व (land revenue) की मात्रा, जो कि 10 वर्ष पूर्व निश्चित की गई थी, कम लाभप्रद है।

इसी प्रकार, प्रत्येक दुकानदार पर लगाया गया स्थिर कर (fixed tax) कम लाभदायक होता है अपेक्षाकृत उस कर के जो कि उनकी निबल आय (net income) अथवा कुल बिक्रियों पर लगाया जाता है। इस प्रकार अच्छी कर-पद्धति वह है जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, पैदावार तथा उपभोग में वृद्धि होने के साथ ही साथ राज्य की आय में स्वयमेव वृद्धि होती रहे।

(6) प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों में समन्वय (Coordination between Direct and Indirect Taxes)

अच्छी कर-पद्धति की रचना एक ही किस्म के करों को मिलाकर नहीं की जानी चाहिए, अपितु उसके अन्तर्गत सभी प्रकार के कर सन्तुलित एवं समन्वित (co-ordinated) तरीके से लगाये जाने चाहिएँ। प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों

नोट

कर-पद्धति में समुचित स्थान मिलना चाहिए ताकि वांछित मात्रा में आय का प्रतिफल प्राप्त हो सके और उत्पादन तथा उपभोग पर कोई प्रतिकूल प्रभाव भी न पड़े अनेक ऐसे लाभ हैं जो प्रत्यक्ष करों (direct taxes) में पाये जाते हैं, परोक्ष करों (indirect taxes) में नहीं। परन्तु प्रत्यक्ष करों में कमी यह है कि वे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था (entire economy) पर कर-भार डालने में समर्थ होते। अत: एक आधुनिक सरकार के बढ़ते हुए खर्चों को पूरा करने के लिए वे यथेष्ठ मात्रा में आय नहीं दे पाते। फिर, एक बात यह है कि परोक्ष कर का भुगतान करदाता के लिए सुविधाजनक होता है। अत: यह सुझाव दिया जाता है कि अर्थव्यवस्था पर अर्थात् उत्पादन व वितरण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, अधिकतम सरकारी आय प्राप्त करने के लिए प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों ही प्रकार के कर लगाये जाने चाहिएँ।

इसी प्रकार, अच्छी कर-पद्धति को केवल आरोही (progressive) अथवा केवल अनुपाती (proportional) करों पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए। इन दोनों ही प्रकार के करों के अपने गुण तथा दोष हैं। अत: किसी भी अच्छी कर-पद्धति के लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था तथा सम्पूर्ण समुदाय के हित में इन दोनों ही प्रकार के करों का लाभ उठाया जाए।

अत: **निष्कर्ष रूप** में कहा जा सकता है कि अच्छी कर-पद्धति में किसी एक विशेष किस्म के करों पर ही अनावश्यक जोर नहीं दिया जाता बल्कि एक सन्तुलित रीति से एवं ताल-मेल के सभी कर इस प्रकार लगाये जाते हैं ताकि सम्पूर्ण समाज से ही आय प्राप्त हो सके और उपभोग, उत्पादन तथा सम्पूर्ण देश के आर्थिक विकास पर उनका कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

(7) कर ढाँचे में अनुकूलता

कर ढाँचा इस प्रकार का होना चाहिए ताकि परिस्थितियों एवं आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सके। आर्थिक उच्चावचन पर नियन्त्रण, पूर्ण रोजगार की स्थापना, दीर्घकालीन गतिहीनता की प्रवृत्तियों का देखना, संकटकाल में मुद्रा-स्फीति पर नियन्त्रण आदि महत्त्वपूर्ण लक्ष्यों को सरकार अपने कर ढाँचे द्वारा प्राप्त कर सकती है।

(8) करदाताओं के अधिकार एवं उनकी समस्या पर ध्यान

एक अच्छी कर प्रणाली का निर्माण करदाताओं के अधिकार एवं उनकी समस्याओं को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य महत्त्वपूर्ण हैं–

(*i*) कर से सम्बन्धित कर कानून अधिक स्पष्ट एवं सरल होने चाहिएँ ताकि एक सामान्य व्यक्ति भी इन्हें आसानी से समझ सके ।

(*ii*) करों का भुगतान एवं वसूली के सम्बन्ध में सरकारी कम से कम होना चाहिए। कर नीति एवं कर वसूल करने का ऐसा समय होना चाहिए जो करदातों के लिए सुविधाजनक हो।

(*iii*) करदाताओं की शिकायतों एवं कठिनाइयों को अति शीघ्रता से उचित कार्यवाही करके समाधान करना चाहिए। इस सम्बन्ध में कुशल प्रशासन अधिक सहायक सिद्ध हो सकता है। शिथिल प्रशासन एवं अलोकप्रिय राजस्व नीतियों से कर देय क्षमता में ह्रास होता है।

(9) उत्पादन पर प्रभाव (Effects on Production)

एक अच्छी कर-पद्धति अर्थव्यवस्था के तीव्र गति से आर्थिक विकास के प्रति आश्वस्त कराती है। वह व्यापार तथा उद्योग के विकास में बाधक नहीं बनती अच्छी कर-पद्धति का ढाँचा इस प्रकार बनाया जाना चाहिए जिससे कि वह अतिरिक्त या फालतू साधनों को अर्थव्यवस्था से अलग कर दे तथा लोगों की काम करने, बचत करने व निवेश करने की योग्यता पर इसका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। कर-पद्धति ऐसी होनी चाहिए जो सदा उत्पादन-वृद्धि को प्रोत्साहन दे अर्थात् वह लोगों को काम करने, बचत करने तथा निवेश (invest) करने के लिए प्रोत्साहित करे। इस बात को **डाल्टन** ने बड़े ही नपे-तुले शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है कि, "आर्थिक दृष्टिकोण से कराधान की सर्वोत्तम पद्धति वह है जो कि सबसे अच्छे अथवा सबसे कम बुरे आर्थिक प्रभाव डालती है।"

नोट

(10) वितरण का प्रभाव (Effects on Distribution)

कराधान का पुराना उद्देश्य तो केवल आय प्राप्त करना मात्र ही रहता था। प्राचीन समय में, चूँकि राज्य को थोड़े ही कार्य सम्पन्न करने होते थे, अत: कराधान को राज्य के लिए धन प्राप्ति का एक साधन मात्र समझा जाता था, परन्तु 'केवल आय के लिए कराधान' इस विचार को अब ऐसा **मध्यकालीन नारा** समझा जाता है जो कि वर्तमान दशाओं में कतई भी लागू नहीं होता। कहा जाता है कि वर्तमान समय में कराधान का उपयोग कुछ सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के एक अस्त्र के रूप में किया जा सकता है, जैसे कि आय की असमानताओं को दूर करना, साधनों को उत्पादक उपयोगों की ओर को मोड़ना तथा समुदाय के सामाजिक कल्याण में वृद्धि करना। जो कर, आय को व्यक्तियों के पास से सरकार की ओर को स्थानान्तरित कर देते हैं उनसे हो सकता है कि गैर-सरकारी उपभोग तथा निवेश (investment) का स्वरूप ही बदल जाए और यह स्थिति राष्टीय आय का स्तर ऊँचा उठाने में सहायक सिद्ध हो सकती है। अत: निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अच्छी कर-पद्धति वह है जो राष्टीय आय की वृद्धि तथा आमदनियों के समान एवं न्यायपूर्ण वितरण के विषय में आश्वस्त करे।

(11) सरकारी आय की मात्रा तथा कल्याण (Size of Revenue and Welfare)

प्राचीन अथवा संस्थापक अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) का विश्वास था कि सरकारी आय का अन्तिम निर्धारक तत्त्व देश के व्यक्तियों के पास विद्यमान धन (Wealth) ही है और सरकारी आय की प्राप्ति केवल उस धन पर कर लगाकर ही की जा जाती है। इस प्रकार, वे वाणिज्यिक आय जैसे अन्य स्रोतों का पता लगाने में असफल रहे।

उसका यह भी विचार था कि गैर-सरकारी क्षेत्र की ओर को साधनों के स्थानान्तरण से लाभ के स्थान पर हानियाँ ही अधिक होती हैं। यह सिद्धान्त कि सरकार, जो सबसे कम कर लगाती है सबसे कम खर्च करती है, वर्तमान समय के लिए उपयुक्त नहीं है। वर्तमान समय में तो सामाजिक न्याय प्रदान करने तथा आर्थिक समानता लाने के लिए भी सरकार को धन की आवश्यकता होती है और कराधान आय की असमानताएँ दूर करने, सामाजिक न्याय लाने का महत्त्वपूर्ण साधन है।

यहाँ यह बात भी ध्यान रखने की है कि सरकारी आय की मात्रा से आशय, और कुछ नहीं, केवल साधनों की उपलब्धता (availability of resources) से ही है। किसी भी देश का आर्थिक कल्याण इस बात पर निर्भर होता है कि ये उपलब्ध साधन कैसे प्राप्त किये जाते हैं तथा उनका उपयोग किया जाता है। यह हो सकता है कि किसी देश में सरकारी आय बड़ी मात्रा में होने पर आर्थिक कल्याण की मात्रा बहुत थोड़ी हो और ऐसा तब हो सकता है जबकि बड़ी आय प्रदान करने वाला कराधान उत्पादन तथा वितरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालता हो। इसके विपरीत, यदि किसी देश का कराधान उत्पादन तथा न्यायपूर्ण वितरण को प्रोत्साहित करता है तो वहाँ सरकारी आय की मात्रा कम होने पर भी आर्थिक कल्याण अधिक मात्रा में देखा जा सकता है। अत: सरकारी आय की बड़ी मात्रा केवल तभी उल्लेखनीय अनुकूल प्रभाव डाल सकती है जबकि उसे बुद्धिमत्तापूर्ण विभिन्न मदों पर खर्च कर दिया जाए। इस प्रकार, सरकारी खर्च भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितनी कि सरकारी आय।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अच्छी कर-पद्धति वह है जो न केवल राज्य को पर्याप्त आय प्रदान करे, अपितु आय तथा धन के वितरण में पाई जाने वाली असमानताओं को दूर करके देश के आर्थिक कल्याण में भी वृद्धि करें ।

4.4.9 विकासशील अर्थव्यवस्था में कर-प्रणाली (Tax Structure in a Developing Economy)

प्रत्येक अर्थव्यवस्था में कर-प्रणाली का स्वरूप इस प्रकार का होना चाहिए कि वह अर्थव्यवस्था की आधारभूत आवश्यकताओं एवं उद्देश्य की पूर्ति कर सके। एक भारत जैसी विकसित अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्या **'आर्थिक स्थिरता'** को बनाये रखने की होती है ताकि वहाँ पूर्ण रोजगार की स्थिति बती रहे। इसलिए विकसित अर्थव्यवस्था में कर-प्रणाली का स्वरूप इस प्रकार का होना चाहिए जिससे कि वहाँ आर्थिक स्थिरता एवं पूर्ण रोजगार को बनाये रखने में सहयोग मिल सके। किन्तु विकसित अर्थव्यवस्था की कर-प्रणाली विकासशील अर्थव्यवस्था के

नोट

लिए उपयुक्त नहीं मानी जाती है। क्योंकि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की मुख्य समस्या आर्थिक विकास की गति को तेज करने की होती है। ऐसी स्थिति में विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में कर-प्रणाली का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिससे पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि करके आर्थिक प्रगति की दर को बढ़ाया जा सके, मुद्रा-स्फीति पर नियन्त्रण किया जा सके तथा धन और आय के वितरण में असमानताओं में कमी की जा सके। इस प्रकार स्पष्ट है कि विकासशील देशों की कर-प्रणाली विकसित देशों की कर-प्रणाली से भिन्नता लिए होती है।

विकाशील देशों की कर-प्रणाली के सम्बन्ध में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **प्रो. किन्डले बर्जर** (Kindley Berger) का कहना है कि इन देशों में कर-नीति के दो मुख्य उद्देश्य होने चाहिए–

(*i*) अनावश्यक उपभोग वृद्धि तथा सटटा आदि पर नियन्त्रण तथा

(*ii*) पूँजी निर्माण में वृद्धि करना।

प्रो. मायर एवं बाल्डविन (Meier and Baldwin) के अनुसार विकासशील देशों की नीति तभी प्रभावशील होगी जबकि उससे–

(*i*) लोगों की करदान क्षमता बढ़ाई जा सके।

(*ii*) प्रशासन को कुशल एवं ईमानदार बनाया जा सके, तथा

(*iii*) न्याय एवं समानता स्थापित की जा सके।

किन्तु इन देशों में सुदृढ़ कर-व्यवस्था का निर्माण करते समय निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए–

(1) **पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि करना (Increase in the rate of Capital Formation)–** विकासशील देशों में पूँजी निमार्ण की दर बहुत नीची होती है। इसलिए इन देशों में करारोपण का मुख्य उद्देश्य उन समस्याओं का हल करना होना चाहिए। कर नीति द्वारा वर्तमान उपभोग में कटौती करके बचतों में वृद्धि की जा सकती है। इसके अतिरिक्त करारोपण द्वारा साधनों का विभिन्न उत्पादक एवं अनुत्पादक क्षेत्रों में पुनर्वितरण करके पूँजी निर्माण की दर में बढ़ोतरी की जा सकती है।

(2) **आर्थिक विकास को गति देना (To Accelerate the Economic Development)**–विकासशील देशों में मुख्य समस्या आर्थिक विकास की गति में वृद्धि करने की होती है। ऐसी स्थिति में कर नीति ऐसी निर्धारित करनी चाहिए ताकि देश के उत्पादन में अधिक से अधिक वृद्धि की जा सके। इसके लिए करारोपण से लोगों के काम करने की क्षमता एवं इच्छा, बचत एवं विनियोग की क्षमता व इच्छा को बढ़ाना आवश्यक है। उत्पादन वृद्धि के लिए करारोपण की सहायता से साधनों की भी विभिन्न क्षेत्रों में पुनर्वितरित किया जा सकता है।

(3) **आर्थिक अतिरेक को गतिशील करना** (To Mobilize the Economic Surplus)–इन देशों में काफी आर्थिक अतिरेक उपभोग जैसे अनुत्पादक कार्यों पर व्यय कर दिया जाता है जिससे पूँजी निर्माण को हानि पहुँचती है। अधिकांश आर्थिक अतिरेक उपभोग पर व्यय कर दिया जाता है। अत: इन देशों में कर-व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो साधनों को निजी उपभोग से हटाकर पूँजी निर्माण की ओर प्रेरित कर सके और पूँजी निर्माण के आधार में निरन्तर वृद्धि कर सके।

(4) **आर्थिक विषमताओं को कम करना** (To Minimize the Economic Disequalities)– विकासशील देशों में आर्थिक विषमताएँ अधिक पाई जाती हैं। सरकार को चाहिए कि वह इस प्रकार की कर-नीति का निर्माण करे जिससे देश में आर्थिक विषमताएँ कम से कम की जा सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति करारोपण द्वारा की जा सकती है। आय एवं धन में समानता लाने के लिए प्रगतिशील कर नीति अपनायी जा सकती है अर्थात् धनी वर्ग पर अधिक दर से कर लगाया जाए तथा निम्न वर्ग पर बहुत कम अन्यथा उन्हें छूट दी जा सकती है। इसके अतिरिक्त धनी वर्ग से करों द्वारा प्राप्त धन को सामाजिक लाभ की सेवाओं में व्यय करना चाहिए।

(5) **मुद्रास्फीति पर नियन्त्रण** (Control on Inflation)–करारोपण मुद्रास्फीति को नियन्त्रित करने का अचूक अस्त्र माना जाता है। विकासशील देशों में व्यय तथा हीनार्थ प्रबन्धन के कारण मुद्रास्फीति की गम्भीर स्थिति पाई जाती है। इस प्रकार की स्थिति में एक ओर विनियोग और आय में वृद्धि होती है किन्तु दूसरी ओर उत्पादन में उस

नोट

अनुपात में वृद्धि नहीं हो पाती है जिसके परिणामस्वरूप वस्तुओं की माँग तथा मूल्य दोनों में वृद्धि हो जाती है और मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसको नियन्त्रित करने के लिए इन देशों में करारोपण का सहारा लिया जाता है। कर-प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो लोगों की अतिरिक्त क्रय शक्ति को कम कर सके और ऐच्छिक बचत को बढ़ावा दे सके।

(6) **योग्यतानुसार अंशदान** (Contribution according to Ability)–कर-प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि सभी लोग सरकार को कुछ न कुछ अंशदान अवश्य दें और करारोपण कर सामर्थ्य के अनुसार वसूल किया जाए। ऐसा करने से दो लाभ होंगे-प्रथम, सरकार को अधिक मात्रा में राजस्व प्राप्त हो सकेगा तथा दूसरे कर-भाग का वितरण न्यायपूर्ण हो सकेगा। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कर-प्रणाली ऐसी अपनायी जानी चाहिए जिसके अन्तर्गत सभी व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार कर चुका सकें।

4.5 कराघात अथवा कर का दबाव (Impact of Tax)

कराघात अथवा कर का दबाव उस व्यक्ति पर पड़ता है जिस पर सरकार कर लगाती है और जो वास्तव में सरकार को कर का भुगतान करता है और करदाता के रूप में सरकार के पास इसी व्यक्ति का नाम पंजीकृत होता है। उदाहरण के लिए, यदि शक्कर पर दस रुपए प्रति क्विंटल का कर सरकार द्वारा लगाया जाता है तो शक्कर के उत्पादक से यह वसूल किया जाता है। अत: कराघात इसी उत्पादक पर होगा क्योंकि सरकार को कर भुगतान विक्रेता से ही प्राप्त होता है। अन्य शब्दों में यही उत्पादक, "कर के भुगतान का प्रारम्भिक मौद्रिक भार उठाता है।" **सेलिगमैन** (Seligman) के अनुसार, "**कर देने का तात्कालिक प्रभाव जिस व्यक्ति पर पड़ता हैं, उसे कराघात कहते हैं।**" जब करदाता किसी कर विशेष के भार को दूसरों पर विवर्तित नहीं कर पाता तो उस पर कराघात के साथ कर का भार भी पड़ता है। प्रत्यक्ष कर इसी प्रकृति के होते हैं, जैसे, आय-कर, सम्पत्ति कर आदि का कराघात और करापात उसी व्यक्ति पर पड़ता है जो उसे सरकारी कोष में जमा करता है।

4.6 कर का विवर्तन (Shifting of Tax)

सामान्य अर्थों में कर विवर्तन का अभिप्राय है करदाता द्वारा कर के भार को किसी दूसरे पर टालना। **कर विवर्तन वह प्रक्रिया है जिसमें करदाता अपने करभार को दूसरों पर डालने का प्रयास करता है।** कर विवर्तन की प्रक्रिया उस समय होती है जब कर का दबाव और कर का भार अलग-अलग व्यक्तियों पर पड़ता है; जैसे बिक्री कर पहले व्यापारियों से लिया जाता है तो उन पर कर का दबाव पड़ता है, किन्तु व्यापारी जब इन करों की मात्रा को आंशिक अथवा पूर्णरूप से वस्तु के मूल्य में सम्मिलित करके उपभोक्ताओं पर टाल देते हैं तो कर का भार अन्तिम रूप से उपभोक्ताओं पर पड़ता है–इस प्रकार कराघात से करापात की स्थिति में पहुँचने की प्रक्रिया ही कर विवर्तन है। **प्रो. मसग्रेव** के शब्दों में, "पारम्परिक अर्थ में कर विवर्तन से आशय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा कर का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार मूल्यों में समाहित करके दबाव के बिन्दु से अन्तिम बिन्दु की ओर हटा दिया जाता है।" इस प्रकार, विवर्तन का करभार से गहरा सम्बन्ध है क्योंकि कर भार से बचने के लिए ही कर विवर्तन किया जाता है। कर विवर्तन जिस बिन्दु के आगे नहीं होता वह बिन्दु करापात अथवा कर भार का बिन्दु होता है। जब कर विवर्तन नहीं हो पाता तो कराघात एवं करापात दोनों एक ही व्यक्ति पर पड़ते हैं।

कर विवर्तन के प्रकार

कर विवर्तन दो प्रकार का होता है–

(1) आगे की ओर कर विवर्तन (Forward Shifting)

(2) पीछे की ओर कर विवर्तन (Backward Shifting)

नोट

जब कर किसी उत्पादक पर लगाया जाए, किन्तु उसे वह क्रेता पर डाल दे तब यह **'आगे की ओर विवर्तन'** कहलाता है और इसके विपरीत जब कर किसी उत्पादक पर लगाया जाए और उत्पादक उस कर को कच्चे माल की आपूर्ति करने वाले व्यक्ति अथवा उत्पादन में काम कर रहे श्रमिक पर स्थानान्तरित कर दे तब यह **'पीछे की ओर विवर्तन'** कहलाता है। कर विवर्तन के प्रकारों को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। जब सरकार चीनी पर उत्पादन कर लगाती है और चीनी का उत्पादक कर के भार को उपभोक्ताओं की ओर टाल देता है तो इसे **आगे की ओर कर विवर्तन** कहा जाएगा, किन्तु यदि चीनी का उत्पादक कर भार को गन्ने के उत्पादकों पर टालने में सफल हा जाता है तो यह **पीछे की ओर कर विवर्तन** का उदाहरण है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

6. कर का दबाव उस व्यक्ति पर पड़ता है जिस पर सरकार ..... लगाती है।
7. उत्पादक कर के भुगतान का प्रारंभिक ..... भारत उठाता है।
8. ..... वह प्रक्रिया है जिसमें करदाता अपने करभार को दूसरों पर डालने का प्रयास करता है।
9. विवर्तन से ..... का गहरा संबंध है।
10. कर विवर्तन जिस बिंदु के आगे नहीं होता वह बिंदु ..... का बिंदु होता है।

4.7 कर का भार अथवा करापात (Incidence of a Tax)

कर के भार को **करापात** भी कहते हैं। **फिण्डेल शिराज** के शब्दों में, **"करापात विवर्तन का अन्तिम परिणाम है, यह प्रत्यक्ष मौद्रिक भार है। इस प्रकार करापात की समस्या में यह विश्लेषण किया जाता है कि कर का भुगतान कौन करता है अर्थात् मौद्रिक भार किस पर पड़ता है।"** यह परिभाषा स्पष्ट करती है कि कर का भार उस व्यक्ति पर पड़ता है जो अन्तम रूप से कर का भुगतान करता है अर्थात् जो अन्तिम रूप से कर के मौद्रिक भार को वहन करता है। जैसे शक्कर के उत्पादक पर कर लगाया जाता है। यदि उत्पादक इस कर को शक्कर का मूल्य बढ़ाकर उपभोक्ताओं पर टालने में सफल हो जाता है तो कर का भार उपभोक्ताओं पर पड़ेगा क्योंकि अन्तिम रूप से शक्कर के उपभोक्ताओं पर ही कर का मौद्रिक भार पड़ेगा। यदि उत्पादक शक्कर पर लगाए गए कर को उपभोक्ताओं पर टालने में सफल नहीं होता तो कराघात के साथ कर का भार भी उत्पादक पर ही पड़ेगा। सामान्यत: शक्कर का उपभोक्ता कर के भार को और आगे नहीं टाल सकता और स्वयं कर का भार सहन करता है।

प्रो. सेलिगमैन के अनुसार, "अन्तिम करदाता पर कर के बोझ के निर्धारण को कर का भार कहा जाता है।"

प्रो. फिलिप ई. टेलर (Philip E. Taylor) के अनुसार, "करभार उस व्यक्ति पर होता है जो उसे और आगे नहीं टाल सकता है।"

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि करापात या कर भार में निम्नांकित तीन तत्त्व सम्मिलित होते हैं–

(*i*) करापात कर का अन्तिम भार है जिसे आगे किसी अन्य पर टाला नहीं जा सकता।

(*ii*) यह कर का मौद्रिक भार है।

(*iii*) यह कर का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार है क्योंकि यह सरकारी कोष में जमा कुल राशि के बराबर होता है।

4.7.1 कराघात एवं करापात में अन्तर
(Distinction Between Impact & Incidence of Taxation)

कराघात और करापात में अन्तर करारोपण के प्रारम्भिक भार एवं अन्तिम भार के आधार पर किया जाता है। कराघात एवं करापात में अन्तर प्रदर्शित करने वाले मुख्य बिन्दु हैं–

नोट

1. कराघात कर के प्रारम्भिक भार को प्रकट करता है और करापात कर के अन्तिम भार को प्रकट करता है।
2. कराघात उस व्यक्ति पर पड़ता है जो उस राशि का भुगतान करता है जबकि करापात उस व्यक्ति पर होता है जो अन्तिम रूप से उस कर भारत को वहन करता है।
3. कराघात का अभिप्राय सरकार को किए गए कर राशि के मौद्रिक भुगतान से है जबकि करापात से अभिप्राय कर के प्रत्यक्ष मौद्रिक भार से लगाया जाता है।
4. करापात उस व्यक्ति पर होता है जो इसे किसी दूसरे पर टाल नहीं सकता जबकि कराघात में कर भार किसी दूसरे पर टाला जा सकता है। दूसरे शब्दों में, **करापात अथवा कर भार का विवर्तन किया जा सकता है, किन्तु कराघात का नहीं।**
5. कराघात से बचना कर अपवंचन (Tax Evasion) कहलाता है जो अवैधानिक है जबकि करापात अथवा कर भार से बचने के लिए प्रयत्न किया जाना पूर्णत: वैधानिक है।

4.7.2 कर का मौद्रिक भार और वास्तविक भार

(Money Burden And Real Burden of Tax)

प्रो. डाल्टन ने कर (Tax) के प्रत्यक्ष भार और अप्रत्यक्ष भार तथा कर के मौद्रिक और वास्तविक भार में भेद किया है।

यदि एक उत्पादक वस्तु के मूल्यों को कर की मात्रा के अनुसार बढ़ाने में सफल हो जाता है तो कर का **प्रत्यक्ष मौद्रिक भार** उपभोक्ताओं पर पड़ता है क्योंकि उसे वस्तु का अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि उत्पादक को पहले ही कुछ करों का भुगतान सरकार को कर देना पड़ता है जिससे उत्पादक को उतनी राशि पर ब्याज की हानि होती है, इसे कर का **अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार** कहते हैं अन्य शब्दों में, जब करदाता को कर की मात्रा की तुलना में अधिक राशि से वंचित होना पड़ता है तो इसे ही कर का अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार कहते हैं।

क्या आप जानते हैं कर भार उस व्यक्ति पर होता है जो उसे और आगे नहीं टाल सकता है।

कर वंचन (Tax Evasion)–जिस व्यक्ति की आय कर-योग्य (Taxable) होती है किन्तु वह अपनी आय का झूठा हिसाब दिखाकर अथवा गलत बिक्री दिखाकर कम करों का भुगतान करता है तो इसे कर वंचन कहते हैं अर्थात् इसमें करदाता करों की चोरी करता है।

कर से बचाव (Tax Avoidance)–यह कर वंचन से भिन्न स्थिति है। जब करदाता कानून का पालन करते हुए कर बचाता है तो उसे कर का बचाव कहते हैं। जैसे भारत में वर्तमान कानून के अनुसार यदि वेतनभोगी कर्मचारी अपनी आय से जीवन बीमा, संचयी सावधि जमा, सामान्य भविष्य निधि आदि में 80,000 ₹ तक जमा करता है तो इस बचत पर आय-कर में से 20 प्रतिशत की छूट (अधिकतम 16,000 ₹) प्राप्त होती है।

कर विवर्तन और कर वंचन में अन्तर–कर विवर्तन और कर वंचन में अन्तर है। जब करदाता कर का भुगतान तो कर देता है परन्तु कर के भार को दूसरों पर टाल देता है तो इसे कर विवर्तन कहते हैं। जैसे विक्रय कर की राशि विक्रेता, उपभोक्ताओं पर टाल देता है। इसके विपरीत कर वंचन में करदाता झूठा हिसाब प्रस्तुत करके कर चुकाने से बच जाता है।

कर विवर्तन और कर वंचन में निम्न भेद हैं–

(*i*) कर विवर्तन एक स्वाभाविक तथा वैज्ञानिक प्रक्रिया है जबकि कर वंचन अवैधानिक कार्य है जो दण्डनीय अपराध है।

(*ii*) कर विवर्तन से सरकार को राजस्व की हानि नहीं होती जबकि कर वंचन से सरकार को भारी आर्थिक क्षति होती है।

नोट

(*iii*) कर विवर्तन में कर का भार किसी-न-किसी को सहना ही पड़ता है जबकि कर वंचन में करों का भुगतान ही नहीं किया जाता तो उसके भार का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

(*iv*) कर विवर्तन से नैतिक पतन का कोई सम्बन्ध नहीं है जबकि कर वंचन से समाज में बेईमानी, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि अवांछनीय कार्यों को प्रोत्साहन मिलता है।

4.8 कर-विवर्तन अथवा करापात के सिद्धान्त (Theories of Shifting of Taxes or Incidence of Taxes)

कर के भार के सम्बन्ध में तीन सिद्धान्त प्रस्तुत किए गए हैं जो निम्न प्रकार हैं–

(1) संकेन्द्रण का सिद्धान्त (Concentration Theory)–इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रांस के प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों ने किया। उनका विश्वास था कि भूमि में ही वास्तविक उत्पादन (Net Product) प्राप्त होता है अत: भूमि पर ही कर लगाया जाना चाहिए। उनका विचार था कि कर चाहे जिस व्यक्ति या वस्तु पर लगाया जाय, उसका अन्तिम भार भूमि पर ही पड़ेगा अर्थात् अन्त में जाकर कर भूमि पर ही केन्द्रित हो जाते हैं। अत: सरकार को अनेक प्रकार के कर न लगाकर केवल भूमि की शुद्ध आय पर ही कर लगाना चाहिए। इससे कर प्रक्रिया सरल होगी तथा करों को एकत्र करने की लागत भी कम होगी।

उपर्युक्त सिद्धान्त की आलोचना की गई है क्योंकि अर्थशास्त्रियों का मत है कि केवल भूमि ही उत्पादक नहीं होती वरन् अन्य व्यवसाय भी उत्पादक होते हैं अत: समाज के अन्य वर्गों पर भी कर लगाए जाने चाहिए। इससे करों का वितरण भी न्यायपूर्ण होगा। संकेन्द्रण सिद्धान्त यद्यपि दोषपूर्ण है पर इससे यह बात ज्ञात होती है कि करों का भुगतान अतिरेक से ही किया जा सकता है जो कर भार के आधुनिक सिद्धान्त का आधार है।

(2) विकेन्द्रण अथवा प्रसरण सिद्धान्त (Diffusion Theory)–इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रांसीसी अर्थशास्त्री **कैनार्ड** (Canard) और ब्रिटिश विद्वान **मैन्सफील्ड** (Mansfield) ने किया। यह सिद्धान्त संकेन्द्रण सिद्धान्त के विपरीत है तथा स्पष्ट करता है कि सभी कर चाहे जिस रूप में लगाए जाएँ, वे पूरे समाज में फैल जाते हैं। अन्य शब्दों में, कर विवर्तन उस समय तक होता रहता है जब तक कि वह सम्पूर्ण समाज में नहीं फैल जाता है। **कैनार्ड** के अनुसार जिस प्रकार शरीर की किसी एक शिरा से रक्त निकालने पर रक्त की कमी केवल उस शिरा में नहीं होती वरन् यह कमी पूरे शरीर में फैल जाती है, उसी प्रकार यदि वर्ग विशेष से सरकार कर वसूल करती है तो उस कर का भार कर विवर्तन के माध्यम से अन्य सभी वर्गों पर वितरित हो जाता है। इसी सन्दर्भ में **प्रो. फिण्डले शिराज** मैन्सफील्ड को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि "किसी भी स्थान पर लगाया जाने वाला कोई भी कर किसी झील में गिरने वाले कंकड़ की भांति होता है जो पानी में इस प्रकार चक्र उत्पन्न करता है कि एक चक्र दूसरे को गति प्रदान करता चला जाता है और केन्द्र-बिन्दु से सम्पूर्ण परिधि आन्दोलित हो जाती है।"

उपर्युक्त सिद्धान्त की भी आलोचना की गई है। इस सिद्धान्त की यह मान्यता गलत है कि प्रत्येक कर को विवर्तित किया जा सकता है। वास्तव में प्रत्यक्ष करों का विवर्तन नहीं किया जा सकता। दूसरे, यह सिद्धान्त कर फैलने की प्रवृत्ति तो बताता है, कर की मात्रा को स्पष्ट नहीं करता। तीसरे यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता को लेकर चलता है जो अवास्तविक एवं काल्पनिक है।

(3) कर भार का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Incidence)–कर भार का आधुनिक सिद्धान्त मूल्य और कीमत के विश्लेषण पर आधारित है। यह सिद्धान्त मानकर चलता है कि कर का भुगतान केवल अतिरेक (Surplus) में से ही किया जाता है एवं कर वस्तु की उत्पादन लागत का भाग है। **प्रो. डाल्टन** और **प्रो. टेलर** का मत है कि उन्हीं करों का विवर्तन सम्भव है जो कीमत सौदों (Price Transactions) से सम्बन्धित होते हैं। यही कारण है कि प्रत्यक्ष करों को इसलिए विवर्तित नहीं किया जा सकता क्योंकि वे कीमत सौदों से सम्बन्धित नहीं होते। जैसा कि शुरू में ही स्पष्ट कर दिया गया है, करों का भुगतान अतिरेक से ही किया जाता है। यदि करदाता को कोई अतिरेक प्राप्त नहीं होता तो वह कर का विवर्तन करता है और यह विवर्तन उस समय तक किया जायगा जब तक कि ऐसी स्थिति पैदा नहीं हो जाती कि उसे आधिक्य प्राप्त होने लगे। वस्तुओं का मूल्य इतना होना चाहिए जिससे

नोट

कर की राशि का भुगतान किया जा सके। यदि कर लगाने के बाद वस्तु के मूल्य में कोई वृद्धि नहीं होती तो इसका यह अर्थ है कि विक्रेता को वर्तमान मूल्य पर ही आधिक्य प्राप्त हो रहा है। इसके विपरीत, यदि वर्तमान मूल्य से कर का भुगतान नहीं किया जा सकता है तो वस्तु के मूल्य में वृद्धि कर दी जाएगी।

4.9 कर भार अथवा कर-विवर्तन को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Determining Incidence or Shifting of Tax)

जब किसी वस्तु पर कर लगाया जाता है अथवा पुराने कर की दर में वृद्धि की जाती है तो करदाता उस कर के भार को दूसरों पर टालने का प्रयत्न करता है। कर के भार को दूसरों पर किस सीमा तक टाला जा सकता है, यह आगे लिखे तत्त्वों पर निर्भर रहता है–

(1) कर की प्रकृति (Nature of Tax)–यह कर की प्रकृति पर निर्भर रहता है कि कर का विवर्तन किया जा सकता है अथवा नहीं और यदि किया जा सकता है, तो किस सीमा तक। उदाहरण के लिए, शुद्ध आय पर लगाए गए कर जैसे, आय-कर अथवा सम्पत्ति कर को विवर्तित नहीं किया जा सकता। किन्तु परोक्ष करों के भार को दूसरों पर टाला जा सकता है, जैसे विक्रय कर उपभोक्ताओं से वसूल किया जा सकता है। किन्तु यदि अल्पकाल में करों के भार को मूल्य में शामिल करने से बिक्री पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तो विक्रेता कर के समस्त भार को उपभोक्ताओं पर नहीं टालता।

(2) कर की शक्ति (Amount of Tax)–यदि किसी वस्तु पर सरकार द्वारा बहुत ही अल्प मात्रा में कर लगाया जाता है तो व्यापारी उसका भार स्वयं सह लेता है तथा उपभोक्ताओं पर उसे नहीं टालता। इसका कारण यह है कि छोटी-सी राशि के लिए वह अपने ग्राहक को नाराज नहीं करना चाहता। किन्तु यदि कर की राशि अधिक है तो इसे उपभोक्ताओं पर टालने का हर सम्भव प्रयत्न किया जाता है।

(3) वस्तु की मांग की लोच (Elasticity of Demand)–कर का विवर्तन वस्तु की लोच पर भी निर्भर रहता है। जिस वस्तु पर कर लगाया गया है यदि उसकी मांग लोचदार है तो कर का भार विवर्तित नहीं किया जाता तथा व्यापारी स्वयं भार का वहन करता है। इसका कारण यह है कि यदि व्यापारी वस्तु का मूल्य बढ़ाता है तो उपभोक्ता वस्तु की माँग कम कर देंगे और इससे विक्रेता की बिक्री कम हो जायेगी और उसे हानि होगी।

इसके विपरीत, यदि वस्तु की माँग बेलोचदार है तो विक्रेता कर के भार को सरलता से उपभोक्ताओं पर टाल देगा क्योंकि वस्तु का मूल्य बढ़ जाने पर भी उपभोक्ता वस्तु की माँग कम नहीं करेंगे। उदाहरणार्थ अनिवार्य वस्तुओं पर लगाए गए कर के भार को टाला जा सकता है पर विलासिताओं पर कर के भार को व्यापारी ही वहन करता है। विभिन्न माँग लोच दशाओं में कर विवर्तन को चित्र 1(A), 1(B), 1(C), 1(D) तथा 1(E) द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

***(i)* जब माँग पूर्णतः लोचदार हो** ($e_d = \infty$)

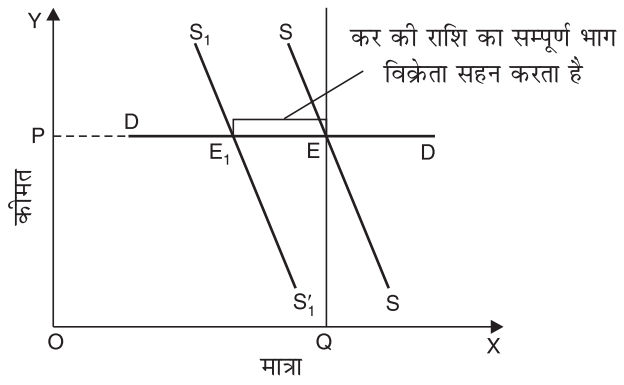

चित्र 1(A)

नोट

(*ii*) जब माँग की लोच पूर्णतया बेलोचदार हो $(e_d = 0)$

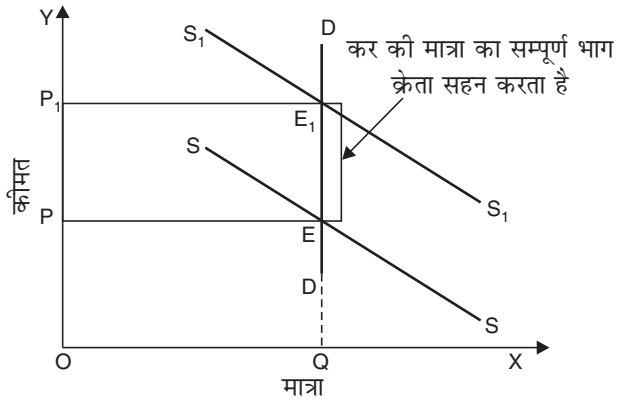

चित्र 1(B)

(*iii*) जब मांग की लोच इकाई से अधिक हो $(e_d > 1)$

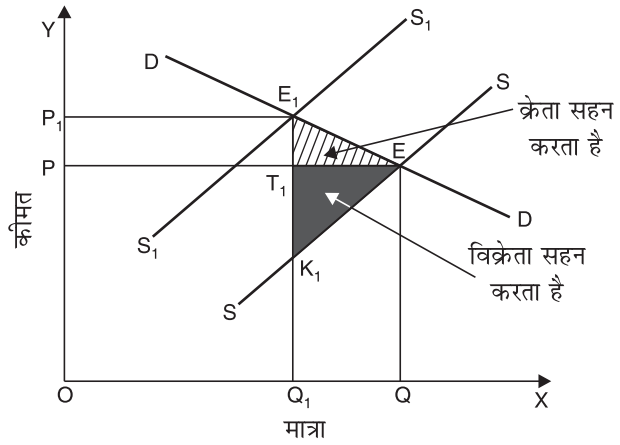

चित्र 1(C)

(*iv*) जब माँग की लोच इकाई से कम हो $(e_d < 1)$

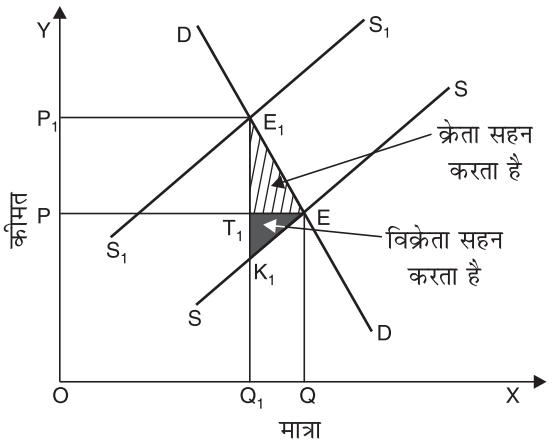

चित्र 1(D)

नोट

(v) जब माँग की लोच इकाई के बराबर हो ($e_d = 1$)

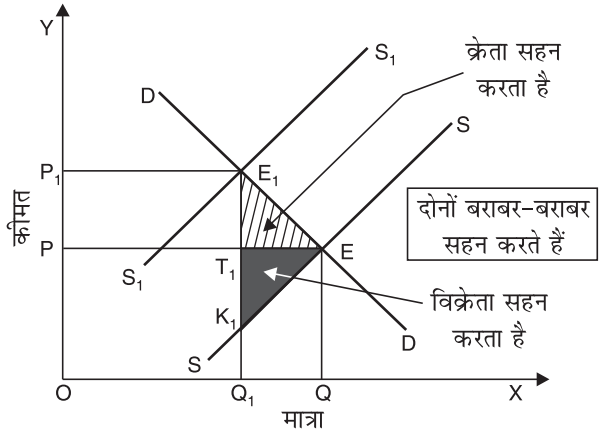

चित्र 1(E)

माँग की विभिन्न लोच की दशाओं में कर भार की स्थिति

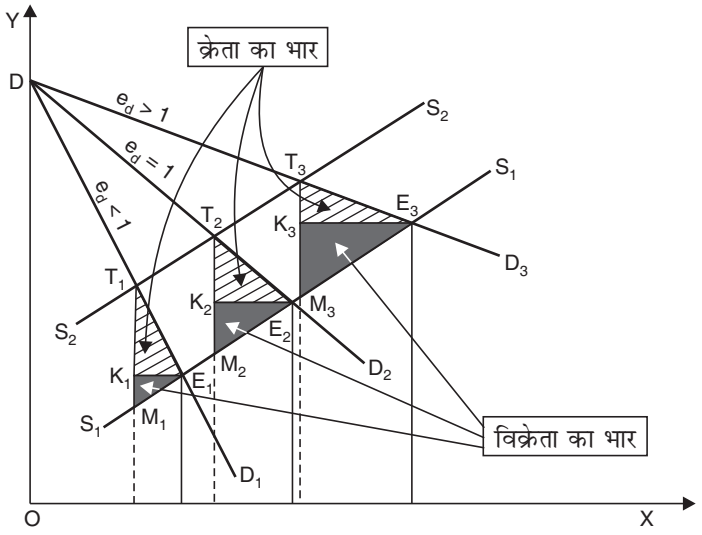

चित्र 2

उपर्युक्त चित्र 2 से स्पष्ट है कि जैसे-जैसे माँग की लोच बढ़ती जाती है वैसे-वैसे विक्रेता पर कर-भार अधिक होता जाता है अर्थात् मांग की लोच जितनी कम होगी कर का भार क्रेता पर उतना ही अधिक होगा तथा इसके विपरीत माँग की लोच जितनी अधिक होगी कर-भार विक्रेता पर बढ़ता चला जाएगा।

(4) वस्तु की पूर्ति की लोच (Elasticity of Supply)–वस्तु की पूर्ति की लोच भी कर भार के विवर्तन को प्रभावित करती है। यदि वस्तु की पूर्ति बेलोचदार है तो इस पर लगाए गए कर का भार व्यापारी पर ही पड़ेगा क्योंकि ऐसी स्थिति में विक्रेता वस्तु का मूल्य बढ़ाकर उसकी पूर्ति को प्रभावित नहीं कर सकता।

इसके विपरीत, यदि वस्तु की पूर्ति लोचदार है तो कर के भार को उपभोक्ताओं पर टाला जा सकता है। इसका कारण यह है कि कर के फलस्वरूप वस्तु में वृद्धि होने से यदि माँग में कमी होती है, तो व्यापारी वस्तु की पूर्ति को कम कर देता है जिससे मूल्य नहीं घट पाते। इस प्रकार, जिस वस्तु पर कर लगाया जाता है यदि उस वस्तु की माँग लोचदार और पूर्ति बेलोचदार होती है तो कर का विवर्तन नहीं किया जा सकता। यदि वस्तु की माँग बेलोचदार होती है तो कर के भार का विवर्तन किया जा सकता है।

नोट

विभिन्न पूर्ति लोच दशाओं में कर-विवर्तन को चित्र 3(A), 3(B), 3(C), 3(D) तथा 3(E) द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

(*i*) जब पूर्ति की लोच पूर्णतया लोचदार हो ($e_s = \infty$)

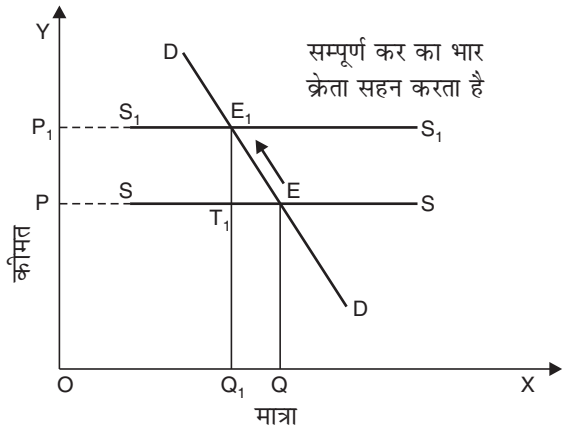

चित्र 3(A)

(*ii*) जब पूर्ति की लोच पूर्णत: बेलोचदार हो ($e_s = 0$)

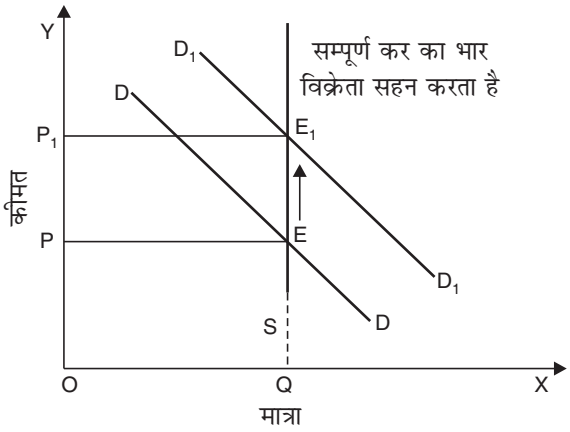

चित्र 3(B)

(*iii*) जब पूर्ति की लोच इकाई से अधिक हो ($e_s > 1$)

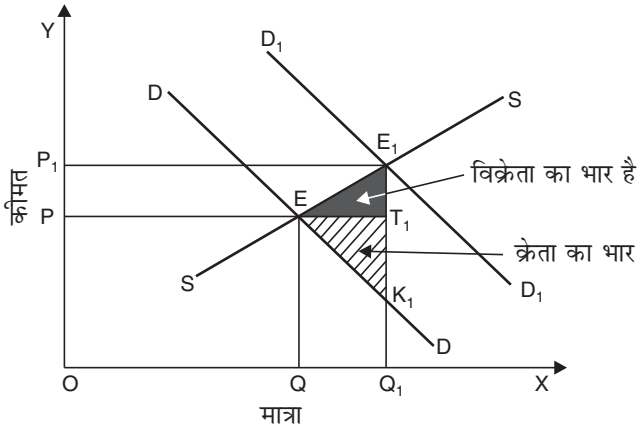

चित्र 3(C)

नोट

(iv) जब पूर्ति की लोच इकाई से कम हो ($e_s < 1$)

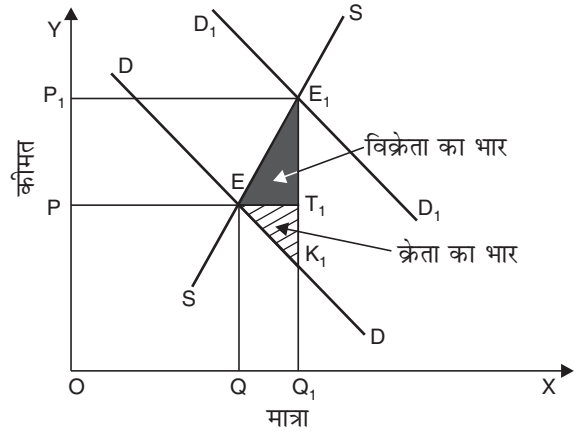

चित्र 3(D)

(v) जब पूर्ति की लोच इकाई के बराबर हो ($e_s = 1$)

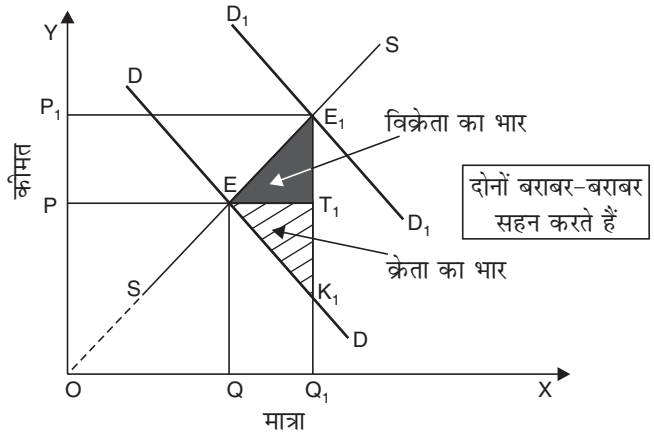

चित्र 3(E)

प्रो. डाल्टन के अनुसार, "प्रत्येक उपभोक्ता अपनी माँग में कमी के द्वारा कर के भार को विक्रेता पर ही डालने का प्रयास करता है जबकि प्रत्येक उत्पादक अथवा विक्रेता वस्तु की पूर्ति में कमी के द्वारा कर के भार को, उपभोक्ता पर डालने का प्रयास करता है। कर के भार का वास्तविक विभाजन अन्ततः उनकी सौदा करने की तुलनात्मक शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है।"

इस प्रकार कर का भार उस वस्तु की माँग व पूर्ति की सापेक्षिक लोच पर निर्भर रहता है जिस पर कर लगाया गया है।

(5) बाजार में प्रतियोगिता (Competition in the Market)–कर के विवर्तन पर इस बात का भी प्रभाव पड़ता है कि बाजार में प्रतियोगिता का अंश क्या है। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कर की राशि को विवर्तित किया जा सकता है क्योंकि इस स्थिति में कर का विवर्तन वस्तु की लोच पर निर्भर रहता है। इसी प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में भी कर विवर्तन इस बात पर निर्भर रहता है कि माँग की लोच कैसी हैं और प्रतियोगिता का अंश क्या है। ध्यान रहे पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार बाजार की काल्पनिक दशाएँ हैं। वास्तव में अपूर्ण प्रतियोगिता ही पाई जाती है।

नोट

(6) करारोपण का उद्देश्य (Object of Taxation)–कुछ कर इस उद्देश्य से लगाए जाते हैं कि उनका विवर्तन कर दिया जाएगा, जैसे, परोक्ष कर। परन्तु कुछ करों का यह उद्देश्य होता है कि जिन पर वे लगाए गए हैं वे ही उसका भुगतान करें तथा उनका विवर्तन न किया जा सके; जैसे, आय-कर।

(7) स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धि (Availability of Substitutes)–जिस वस्तु पर कर लगाया गया है, यदि बाजार में उसकी स्थानापन्न वस्तु उपलब्ध होती है तो कर भार को सरलता से विवर्तित नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि जैसे ही उत्पादक करों को वस्तु के मूल्य में शामिल करता है मूल्य बढ़ जाता है जिसके फलस्वरूप उपभोक्ता उन स्थानापन्न वस्तुओं का प्रयोग करने लगते हैं जो सस्ती होती है। जिन वस्तुओं की कोई स्थानापन्न वस्तुएँ नहीं होती यदि उन पर कर लगाया जाता है तो विक्रेता आसानी से करों की राशि को विवर्तित कर देता है क्योंकि उपभोक्ता ऐसी वस्तु को खरीदने के लिए बाध्य होता है।

(8) कर का आधार (Basis of Taxation)–विशिष्ट करों अर्थात् संख्या, वजन अथवा आकार के आधार पर लगाए गए करों का विवर्तन किया जा सकता है। किन्तु वस्तु के मूल्य के आधार पर (Advalorem) लगाए गए करों का विवर्तन करना कठिन होता है क्योंकि जैसे-जैसे वस्तु का मूल्य बढ़ता है करों की राशि भी बढ़ती जाती है।

क्या आप जानते हैं पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कर की राशि को विवर्तित किया जा सकता है।

(9) उत्पत्ति के नियम (Laws of Return)–कर के विवर्तन पर उत्पत्ति के नियमों का भी प्रभाव पड़ता है जिसका विवेचन अग्र प्रकार है–

***(i)* क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम**–यदि वस्तु का उत्पादन, उत्पत्ति ह्रास नियम के अन्तर्गत हो रहा है तो इसका आशय यह है कि जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता है प्रति इकाई लागत में वृद्धि होती है। अत: जब कर की राशि मूल्य में जोड़ी जाती है तो वस्तु का मूल्य अधिक बढ़ जाता है जिससे वस्तु की माँग में कमी होने की सम्भावना रहती है। अत: कर की पूर्ण राशि का विवर्तन नहीं किया जा सकता है।

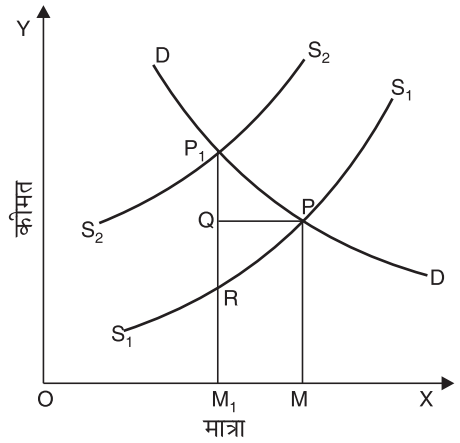

चित्र 4(a)

चित्र 4(*a*) में S_1S_1 कर लगने के पूर्व का पूर्ति वक्र है जबकि S_2S_2 कर लगने के बाद का पूर्ति वक्र है। कर लगने से पूर्व वस्तु की कीमत PM है तथा कर लगने के बाद वस्तु की कीमत बढ़कर P_1M_1 हो जाती है। अत: कीमत में होने वाली वृद्धि P_1Q के बराबर है अत: क्रेताओं पर कर का भार P_1Q के बराबर होगा जो कर की राशि P_1R से कम है। दूसरे शब्दों में विक्रेताओं पर पड़ने वाला कर का भार QR के बराबर है।

***(ii)* क्रमागत उत्पत्ति समता नियम**–यदि वस्तु का उत्पादन, उत्पत्ति समता नियम के अन्तर्गत हो रहा है तो उत्पत्ति घटाने या बढ़ाने का लागत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यदि कर की राशि को वस्तु के मूल्य में जोड़ा जाता है तो

नोट

इसमें माँग प्रभावित नहीं होती और कर की समस्त राशि को मूल्य में मिलाकर उपभोक्ताओं पर विवर्तित किया जा सकता है।

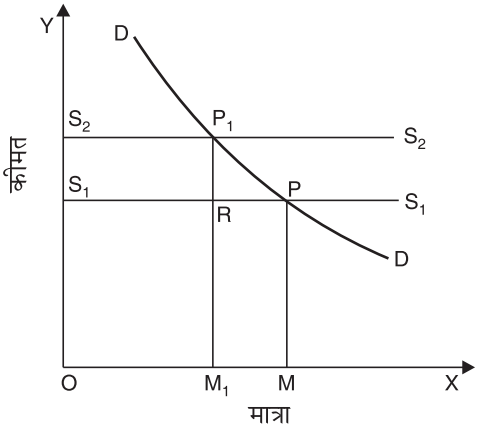

चित्र 4(b)

चित्र 4(*b*) में S_1S_1 कर लगने के पूर्व का पूर्ति वक्र है और S_2S_2 कर लगने के बाद का पूर्ति वक्र है। कर से पूर्व कीमत PM के बराबर है जबकि कर के बाद कीमत P_1M_1 हो जाती है। इस प्रकार कर की मात्रा P_1R के बराबर है। चित्र से स्पष्ट है कि सम्पूर्ण कर का भार क्रेताओं द्वारा वहन किया जाता है और विक्रेता कर भार का कोई अंश वहन नहीं करता है।

***(iii)* क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम** (Decreasing Cost)–यदि वस्तु का उत्पादन, उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत हो रहा है तो जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता है प्रति इकाई लागत घटती जाती है। यदि ऐसी स्थिति में कर लगाया जाए तो वस्तु के मूल्य में कर की राशि से अधिक की वृद्धि हो सकती है और उसका भार उपभोक्ताओं पर पड़ेगा।

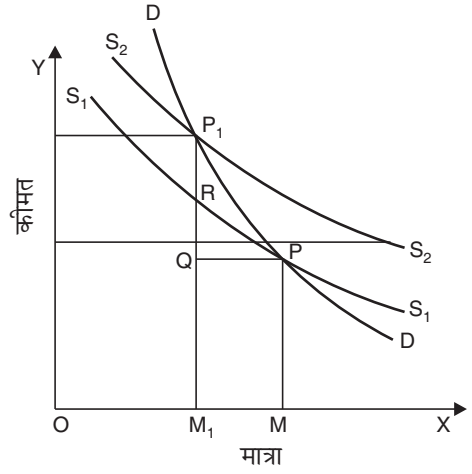

चित्र 4(c)

चित्र 4(*c*) में S_1S_1 कर लगने के पूर्व का पूर्ति वक्र है तथा S_1S_2 कर लगने के बाद का पूर्ति वक्र है। कर लगने से पूर्व कीमत PM के बराबर है कर की राशि P_1R के बराबर है जबकि कीमत में होने वाली वृद्धि P_1Q के बराबर है इस प्रकार चित्र से स्पष्ट है कि उत्पत्ति वृद्धि नियम में लगाए गए कर से अधिक मूल्य में वृद्धि हो जाती है और क्रेताओं को कर की राशि से अधिक भार वहन करना पड़ता है।

नोट

(10) समय तत्त्व (Time Element)–यदि विक्रेता पर कोई कर बहुत थोड़े समय के लिए अस्थाई रूप से लगाया जाता है तो वह प्राय: भार को स्वयं सह लेता है तथा उसे अपने ग्राहकों पर नहीं टालता। किन्तु जो कर स्थायी रूप में लगाए जाते हैं, विक्रेता द्वारा उन्हें विवर्तित करने का प्रयास किया जाता है।

(11) पूंजी की गतिशीलता (Mobility of Capital)–यदि पूंजी पूर्ण रूप से गतिशील होती है तो उत्पादक कर के भार को उपभोक्ताओं पर विवर्तित करने में सफल हो जाता है क्योंकि वह पूंजी का विनियोग कर उससे लाभ प्राप्त कर लेता है। किन्तु यदि उसने पहले से ही व्यवसाय में अधिकतम पूंजी लगा रखी है तो कर के भार को उपभोक्ताओं पर नहीं डाला जा सकता।

टास्क उत्पत्ति के नियम को लिखें।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

11. प्रत्यक्ष करों का ..... नहीं किया जा सकता।
12. करभार का आधुनिक सिद्धांत मूल्य और ..... के विश्लेषण पर आधारित है।
13. वस्तुओं का मूल्य इतना होना चाहिए जिससे कर की राशि का ..... किया जा सके।
14. कर का विवर्तन वस्तु की ..... पर भी निर्भर करता है।
15. वस्तु की पूर्ति की लोच भी करभार के ..... को प्रभावित करती है।

4.10 कर भार की समस्या के अध्ययन का महत्त्व (Importance of Incidence Problem Study)

करारोपण में न्याय की समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण है अत: समाज के विभिन्न वर्गों में कर का भार समान रूप से वितरित किया जाना चाहिए। किन्तु जब तक वित्तमन्त्री को यह ज्ञान न हो कि करों का मौद्रिक भार अन्त में किस वर्ग पर पड़ता है, वह करों के भार का न्यायपूर्ण वितरण नहीं कर सकता। करारोपण कर देने की योग्यता के अनुरूप है अथवा नहीं, यह जानने के लिए करों के अन्तिम भार का अध्ययन करना बहुत आवश्यक है। जैसे सरकार यदि यह फैसला करती है कि शक्कर के उत्पादकों पर कर लगाया जाये क्योंकि उनमें भुगतान करने की योग्यता है। किन्तु यदि ये उत्पादक अपने कर के भार को उपभोक्ताओं पर टालने में सफल हो जाते हैं तो सरकार का उद्देश्य ही विफल हो जाता है।

प्रो. सेलिगमैन के अनुसार, **"करों के विविध आर्थिक प्रभावों को जानने के लिए भी कर भार का अध्ययन आवश्यक है।"** उनके ही शब्दों में, **"कर भार निर्धारित कर लेने के बाद ही हम किसी कर के व्यापक प्रभावों के अध्ययन की दिशा में बढ़ सकते हैं।"**[1]

कर के अन्तिम भार के अध्ययन की अपनी कुछ सीमाएँ हैं। अभी सांख्यिकी की कोई ऐसी इकाई विकसित नहीं हुई है जिसके द्वारा कर के भार का सही अनुमान लगाया जा सके। किन्तु इसके बावजूद व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक दोनों ही रूपों में कर भार के अध्ययन की उपयोगिता है। कभी-कभी कीमतों में परिवर्तन के कारण करों के भार को मालूम करना सम्भव नहीं हो पाता। फिर कभी कर भार और कर के प्रभाव में भेद कर पाना भी सम्भव नहीं होता। **प्रो. कैनन** (Cannan) का मत है कि **"केवल यह जानना कि कर का भार एक विशेष व्यक्ति पर पड़ता है, इस बात का प्रमाण नहीं है कि वह दूसरों की तुलना में अधिक भार का वहन कर रहा है।"**

नोट

4.11 कुछ मुख्य करों के भार का अध्ययन (Study of the Incidence of Some Important Taxes)

(1) आय पर करों का भार (Incidence of Tax on Income)—आय पर लगाए जाने वाले करों में **आय-कर, अतिरिक्त लाभकर, निगम कर, पूंजी लाभ कर** (Capital gains tax) आदि का समावेश होता है। चूँकि ये कर शुद्ध आय पर लगाए जाते हैं, इनका भार उन्हीं व्यक्तियों पर पड़ता है, जिन पर ये लगाए जाते हैं।

यदि वेतन और मजदूरी से प्राप्त आय पर कर लगाया जाता है तो साधारणत: इसे विवर्तित नहीं किया जा सकता। इस कर का विवर्तन सेवायोजकों (Employers) पर ही किया जा सकता है किन्तु सेवायोजक केवल इसलिए अधिक वेतन और मजदूरी देने को तैयार नहीं होंगे कि श्रमिकों की आय पर कर लगा दिया गया है। इसका कारण यह है कि आय-कर लगने से कर्मचारियों की उत्पादकता में कोई वृद्धि तो होती नहीं है।

जहाँ तक व्यावसायिक शुद्ध लाभ पर लगाए जाने वाले कर का प्रश्न है, कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि वस्तुओं का मूल्य बढ़ाकर इसका विवर्तन किया जा सकता है किन्तु यह तर्क उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि वास्तव में बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है। अपूर्ण प्रतियोगिता में व्यवसायी सरलता से वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि नहीं कर सकता। इस प्रकार शुद्ध लाभ पर लगाए जाने वाले कर का भार व्यापारियों पर ही पड़ता है।

यदि आय पर भारी मात्रा में कर लगाया जाता है तो इसका कर भार भी करदाता पर पड़ता है। किन्तु जब उत्पादन पर भारी मात्रा में कर लगाया जाता है तो इसका विनियोग और उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(2) सम्पत्ति पर कर का भार (Incidence of Tax on Property)—विश्लेषण की सुविधा के लिए सम्पत्ति पर कर के भार का अध्ययन हम दो खण्डों में करेंगे—**प्रथम,** उस सम्पत्ति पर कर जिसका प्रयोग उत्पादन के लिए किया जाता है और **द्वितीय,** उस सम्पत्ति पर कर जिसका प्रयोग आवश्यकताओं की प्रत्यक्ष सन्तुष्टि के लिए किया जाता है।

जब ऐसी सम्पत्ति के स्वामित्व पर कर लगाया जाता है जिसका प्रयोग उत्पादन के लिए किया जाता है, तो इस कर को विवर्तित किया जा सकता है। जैसे कारखाने की इमारत पर कर लगाया जाता है तो उत्पादक इसे लागत मानकर वस्तु के मूल्य में शामिल कर लेता है और इसे उपभोक्ताओं पर टालने में सफल हो जाता है।

जब ऐसी सम्पत्ति पर कर लगाया जाता है जिसका प्रयोग करदाता द्वारा प्रत्यक्ष सन्तुष्टि के लिए किया जाता है, जैसे स्वयं रहने का मकान, कार, आभूषण इत्यादि तो इस कर का विवर्तन करना सम्भव नहीं होता क्योंकि इसके विवर्तन में कीमत का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

(3) बिक्री कर का भार (Incidence of Sales Tax)—जो कर वस्तुओं पर लगाया जाता है, विक्रेता उसे वस्तु के मूल्य में शामिल कर लेता है और कर की राशि को उपभोक्ताओं पर टालने में सफल हो सकता है अर्थात् कराघात तो विक्रेताओं पर पड़ता है किन्तु कर का भार उपभोक्ताओं पर पड़ता है, किन्तु इस कथन का सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता क्योंकि विक्रेता सदैव बिक्री-कर को विवर्तित करने में सफल नहीं होता। **विक्रेता उन्हीं वस्तुओं के कर को विवर्तित करने में सफल हो पाता है जिनकी माँग बेलोचदार होती है** तथा जिनकी स्थानापन्न वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं, उन पर लगाए गए करों की राशि को विवर्तित करना विक्रेता के लिए सम्भव नहीं होता।

ऐसी दशा भी उत्पन्न हो सकती है कि विक्रेता करों को उपभोक्ताओं पर (आगे की ओर विवर्तन) न टालकर उनका पीछे की ओर विवर्तन करे अर्थात् वस्तुओं का मूल्य न बढ़ाकर थोक व्यापारी अथवा उत्पादक को कम कीमत पर बेचने के लिए बाध्य करे। कभी-कभी बिक्री-कर का भार आंशिक रूप से क्रेता और आंशिक रूप से विक्रेता पर भी पड़ता है जो उपभोक्ताओं और विक्रेताओं की सौदा करने की तुलनात्मक शक्तियों (Bargaining Power) द्वारा निर्धारित होता है।

(4) उत्पादन पर करों का भार (Incidence of Taxes on Production)—यह कर वस्तुओं के उत्पादन पर लगाया जाता है। उत्पादन पर करों के भार का अध्ययन बिक्री-कर के समान ही है। जो कर उत्पादन पर लगाए जाते हैं, उन्हें उत्पादकों द्वारा वस्तु के मूल्य में शामिल कर लिया जाता है और उन्हें उपभोक्ताओं पर टाल दिया जाता है। **प्रो. टेलर** (Philip E. Taylor) के अनुसार, "उत्पादन पर लगाए जाने वाले समस्त कर, उत्पादक अथवा विक्रेता

नोट

द्वारा उत्पादन लागत माने जाते हैं किन्तु विभिन्न उत्पादन लागतों में जिन पर प्रारम्भिक कराघात (Impact of Tax) होता है, करों की विवर्तित करने का अंश अलग-अलग होता है।"

प्रो. टेलर के अनुसार उत्पादन पर तीन प्रकार के कर लगाए जाते हैं–

(*i*) वे कर जिनकी राशि निश्चित होती है तथा जिनका उत्पादन की मात्रा से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

(*ii*) दूसरे प्रकार के कर वे कर होते हैं जो उत्पादन की मात्रा के अनुपात में घटते-बढ़ते हैं। इसके अन्तर्गत उत्पादन कर (Excise Duty) आते हैं। ये कर परिवर्तनशील लागत (variable cost) के समान होते हैं तथा इन्हें वस्तु के प्रति इकाई लागत में जोड़ा जा सकता है। किन्तु इन करों को कितनी सीमा तक विवर्तित किया जा सकता है, यह वस्तु की माँग की लोच तथा पूर्ति की लोच पर निर्भर रहता है।

(*iii*) तीसरे प्रकार के उत्पादन कर वे होते हैं जो परिवर्तनशील लागत में परिवर्तन के साथ घटते-बढ़ते रहते हैं परन्तु करों में परिवर्तन, अस्थिर लागत में परिवर्तन के अनुपात में ही नहीं होता।

उपर्युक्त करों के विवर्तन के सम्बन्ध में **प्रो. टेलर** का मत है कि **"कोई भी उत्पादन कर विवर्तित किया जा सकता है अथवा नहीं, यह विवर्तन के विरुद्ध बचाव की शक्ति पर निर्भर होगा। बचाव की शक्ति मांग और पूर्ति की लोच में प्रतिबिम्बित होती है।"**

(5) आयात-निर्यात करों का भार (Incidence of Export & Import Duties)–आयात और निर्यात कर परोक्ष कर होते हैं। सामान्य रूप से आयात करों का भार उपभोक्ताओं पर पड़ता है क्योंकि आयातकर्ता आयातित वस्तुओं का मूल्य बढ़ाकर, कर की राशि को देश के उपभोक्ताओं से वसूल कर लेता है। जब सरकार संरक्षण के उद्देश्य से आयात कर लगाती है तो इन करों की दर ऊंची होती है। ऐसी स्थिति में आयाताकर्ता, कर को पूर्ण रूप से विवर्तित नहीं कर पाता और आंशिक रूप से स्वयं कर के भार को सहता है।

जब सरकार केवल **आय प्राप्त करने के उद्देश्य से** आयात कर लगाती है तो कर की दर बहुत ऊंची नहीं होती और ऐसे करों के भार को उपभोक्ताओं पर टाला जा सकता है। किन्तु यह विवर्तन किस सीमा तक किया जा सकेगा, यह देश में उपलब्ध स्थानापन्न वस्तुओं, उपभोक्ताओं की मांग की लोच आदि पर निर्भर रहता है।

निर्यात कर का भार सामान्य रूप से निर्यात करने वाले व्यापारी पर पड़ता है किन्तु परिस्थितियों के अनुसार निर्यात करों के भार को निर्यातकर्ता, आयातकर्ता और विदेशी उपभोक्ताओं के बीच वितरित किया जा सकता है। यदि निर्यात की जाने वाली वस्तु की माँग लोचदार है तो निर्यात कर का भार निर्यातक पर पड़ता है। इसके विपरीत, यदि निर्यात की जाने वाली वस्तु की माँग बेलोचदार तथा अधिक तीव्र है तो निर्यात कर का भार आयात करने वाले देश के उपभोक्ताओं पर पड़ेगा। यदि निर्यातक देश का वस्तु पर एकाधिकार है और विश्व में अनेक देश उसके ग्राहक होते हैं तो निर्यात कर के भार को पूर्ण रूप से आयातक देश पर टाला जा सकता है।

(6) व्यवसाय कर का भार (Incidence of Professional Tax)–सरकार द्वारा कभी-कभी विभिन्न प्रकार के व्यवसायों पर प्रगतिशील आधार पर कर लगाया जाता है अर्थात् व्यवसाय से जैसे-जैसे आय बढ़ती है, व्यवसाय कर की मात्रा भी बढ़ा दी जाती है। यह कर प्रत्यक्ष कर के समान ही है जिसका अन्तिम भार करदाता पर ही पड़ता है। परन्तु कुछ परिस्थितियों में इस कर को विवर्तित किया जा सकता है, जैसे यदि एक डॉक्टर के व्यवसाय पर कर लगाया जाता है तो वह इस कर को मरीजों से ली जाने वाली फीस पर विवर्तित कर सकता है किन्तु एक प्राध्यापक पर लगाए गए व्यवसाय कर को विवर्तित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार व्यवसाय कर का विवर्तन व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर रहता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

16. करारोपण सिद्धांत का प्रतिपादन किसने किया?

(अ) एडम स्मिथ (ब) हैडले

(स) अरस्तु (द) बेस्टेबिल।

नोट

17. सर्वप्रथम कराधान को क्या होना चाहिए?

(अ) अनुत्पादक (ब) उत्पादक

(स) उपभोग (द) सभी।

18. जो आवश्यकता अनुसार सभी प्रकार के करों का समावेश कर लेती है उसे क्या कहते हैं?

(अ) दोषपूर्ण कर प्रणाली (ब) समता कर प्रणाली।

(स) आदर्श कर प्रणाली (द) विकृत कर प्रणाली।

4.12 सारांश (Summary)

- सन् 1500 के पश्चात् जब आधुनिक राज्य का उदय हुआ, तो शनैः शनैः कराधान (Taxation) ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। सरकारी खर्च की वृद्धि के साथ ही आय के नये-नये स्रोत ढूँढ़ने आवश्यक हो गये और वे ढूँढे गये नई-नई सम्पत्तियों पर, नई-नई व्यावसायिक क्रियाओं पर तथा उपभोग की नई-नई वस्तुओं पर कर लगाकर 19वीं और 20वीं शताब्दी में आय कर तथा उत्तराधिकार कर का महत्त्व बढ़ा।
- सन् 1929 के अन्त में आरम्भ होने वाली और लम्बी अवधि तक खिंचने वाली मन्दी (depression) ने कुछ प्रचलित करों की उपयोगिता को समाप्त कर दिया और सामाजिक सहायता पर सरकारी व्यय में होने वाली वृद्धि ने नये-नये करों की माँग उत्पन्न कर दी।
- प्रत्येक राज्य के नागरिकों को यथासम्भव अपनी-अपनी योग्यता के अनुपात में सरकार की सहायता के लिए अंशदान करना चाहिए, अर्थात् उस आय के अनुपात में जिसका आनन्द वे राज्य के संरक्षण में प्राप्त करते हैं...। इस सिद्धान्त का अनुकरण करने से कराधान की समानता प्राप्त की जा सकती है और इसकी उपेक्षा करने से कराधान की असमानता यह सिद्धान्त यह स्पष्ट बताता है कि सरकार को अपने व्यय की पूर्ति के लिए प्रत्येक नागरिक से उसकी योग्यतानुसार कर वसूल करना चाहिए।
- प्रत्येक कर ऐसे समय तथा ऐसी रीति से वसूल किया जाना चाहिए कि उसको अदा करना करदाता के लिए सबसे अधिक सुविधाजनक हो।
- प्रत्येक कर इस प्रकार लगाया तथा वसूल किया जाना चाहिए कि उसके द्वारा राज्य के कोष में जितना धन आये, लोगों की जेब से उसके अलावा फालतू धन कम से कम मात्रा में निकले।
- सर्वप्रथम कराधान को उत्पादक होना चाहिए।
- राजस्व व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य राज्य के खर्चों के लिए आय प्राप्त करना होता है, अतः वित्त मन्त्री स्वभावतः ही कर द्वारा प्राप्त होने वाली रकम से ही उसके गुणों का अनुमान लगाता है।
- यदि मुझसे एक अच्छी कर-पद्धति की व्याख्या करने को कहा जाये तो मैं कहूँगा कि अच्छी कर-पद्धति वह है जो लोगों की अपरिमित संख्या पर बहुत हल्का दबाव डाले और भारी दबाव किसी पर भी नहीं।
- न तो कोई कर पूर्णतया अच्छा होता है और न ही पूर्णतया खराब होता है।
- कराघात अथवा कर का दबाव उस व्यक्ति पर पड़ता है जिस पर सरकार कर लगाती है और जो वास्तव में सरकार को कर का भुगतान करता है और करदाता के रूप में सरकार के पास इसी व्यक्ति का नाम पंजीकृत होता है।
- कर देने का तात्कालिक प्रभाव जिस व्यक्ति पर पड़ता हैं, उसे कराघात कहते हैं। जब करदाता किसी कर विशेष के भार को दूसरों पर विवर्तित नहीं कर पाता तो उस पर कराघात के साथ कर का भार भी पड़ता है।
- सामान्य अर्थों में कर विवर्तन का अभिप्राय है करदाता द्वारा कर के भार को किसी दूसरे पर टालना। कर विवर्तन वह प्रक्रिया है जिसमें करदाता अपने करभार को दूसरों पर डालने का प्रयास करता है।

नोट

- करापात विवर्तन का अन्तिम परिणाम है, यह प्रत्यक्ष मौद्रिक भार है। इस प्रकार करापात की समस्या में यह विश्लेषण किया जाता है कि कर का भुगतान कौन करता है अर्थात् मौद्रिक भार किस पर पड़ता है।
- कराघात और करापात में अन्तर करारोपण के प्रारम्भिक भार एवं अन्तिम भार के आधार पर किया जाता।
- यदि एक उत्पादक वस्तु के मूल्यों को कर की मात्रा के अनुसार बढ़ाने में सफल हो जाता है तो कर का **प्रत्यक्ष मौद्रिक भार** उपभोक्ताओं पर पड़ता है क्योंकि उसे वस्तु का अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है।
- कर विवर्तन उस समय तक होता रहता है जब तक कि वह सम्पूर्ण समाज में नहीं फैल जाता है। **कैनार्ड** के अनुसार जिस प्रकार शरीर की किसी एक शिरा से रक्त निकालने पर रक्त की कमी केवल उस शिरा में नहीं होती वरन् यह कमी पूरे शरीर में फैल जाती है, उसी प्रकार यदि वर्ग विशेष से सरकार कर वसूल करती है तो उस कर का भार कर विवर्तन के माध्यम से अन्य सभी वर्गों पर वितरित हो जाता है।
- कर भार का आधुनिक सिद्धान्त मूल्य और कीमत के विश्लेषण पर आधारित है। यह सिद्धान्त मानकर चलता है कि कर का भुगतान केवल अतिरेक (Surplus) में से ही किया जाता है एवं कर वस्तु की उत्पादन लागत का भाग है।
- करदाता कर का कितना भाग दूसरों पर विवर्तित कर सकता है, यह कर की प्रकृति, वस्तु की मांग एवं पूर्ति की लोच, वस्तु की उत्पादन, लागत आदि पर निर्भर रहता है।
- जब किसी वस्तु पर कर लगाया जाता है अथवा पुराने कर की दर में वृद्धि की जाती है तो करदाता उस कर के भार को दूसरों पर टालने का प्रयत्न करता है।
- कर का विवर्तन वस्तु की लोच पर भी निर्भर रहता है। जिस वस्तु पर कर लगाया गया है यदि उसकी मांग लोचदार है तो कर का भार विवर्तित नहीं किया जाता तथा व्यापारी स्वयं भार का वहन करता है।
- प्रत्येक उपभोक्ता अपनी माँग में कमी के द्वारा कर के भार को विक्रेता पर ही डालने का प्रयास करता है जबकि प्रत्येक उत्पादक अथवा विक्रेता वस्तु की पूर्ति में कमी के द्वारा कर के भार को, उपभोक्ता पर डालने का प्रयास करता है। कर के भार का वास्तविक विभाजन अन्ततः उनकी सौदा करने की तुलनात्मक शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है।
- करों के विविध आर्थिक प्रभावों को जानने के लिए भी कर भार का अध्ययन आवश्यक है।
- केवल यह जानना कि कर का भार एक विशेष व्यक्ति पर पड़ता है, इस बात का प्रमाण नहीं है कि वह दूसरों की तुलना में अधिक भार का वहन कर रहा है।
- कोई भी उत्पादन कर विवर्तित किया जा सकता है अथवा नहीं, यह विवर्तन के विरुद्ध बचाव की शक्ति पर निर्भर होगा। बचाव की शक्ति मांग और पूर्ति की लोच में प्रतिबिम्बित होती है।

4.13 शब्दकोश (Keywords)

- करारोपण (Taxation)–कर लगाना।
- आय-कर (Income Tax)–आय पर लगने वाला कर।

4.14 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. कराधान के विकास पर प्रकाश डालिए।
2. निश्चितता के सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करें।
3. लोचदार सिद्धांत क्या है?
4. कर के कितने पहलू हैं? लिखें।

नोट

5. "राष्ट्रीय आय की वृद्धि के साथ ही सरकारी आय भी बढ़नी चाहिए"। इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं? अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
6. कर विवर्तन से क्या अभिप्राय है?
7. कराघात को परिभाषित करें।
8. करापात की व्याख्या करें।
9. कराघात एवं करापात में क्या अंतर है?
10. कर का मौद्रिक भार और वास्तविक भार से आप क्या समझते हैं?
11. क्रमागत उत्पत्ति समता नियम की व्याख्या करें।
12. क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम की सोदाहरण व्याख्या करें।
13. उत्पत्ति के नियमों की सप्रसंग व्याख्या करें।
14. वस्तु की माँग की लोच से आपका क्या अभिप्राय है?
15. करापात के सिद्धांतों की सप्रसंग व्याख्या करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. ऐच्छिक	2. 1500	3. एडम स्मिथ	4. हैडले
5. प्रशासनिक	6. कर	7. मौद्रिक	8. कर विवर्तन
9. कर भार	10. करापात	11. विवर्तन	12. कीमत
13. भुगतान	14. लोच	15. विवर्तन	16. अ
17. ब	18. स		